अध्याय 1

भारतीय समाज के संरचनात्मक, सांस्कृतिक पहलू एवं विविधता की चुनौतियाँ, धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनैतिक विभिन्नता में एकता

अध्ययन बिन्दु–

- भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलू
- भारतीय समाज के सांस्कृतिक पहलू
- भारतीय समाज में विविधता की चुनौतियाँ
- भारतीय समाज में विभिन्नता में एकता

प्रस्तुत अध्याय में समाज को परिभाषित करते हुए भारतीय समाज की संरचना एवं संस्कृति को स्पष्ट किया गया है। साथ ही भारतीय समाज में विविधता एवं एकता के तत्त्वों की विवेचना की गई है।

इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी समझ पाएँगे कि–

- समाज क्या है?
- एक समाज के उदाहरण के रूप में भारतीय समाज क्या है?
- भारतीय समाज की संरचना के घटक कौनसे हैं?
- भारतीय समाज के सांस्कृतिक घटक कौनसे हैं?
- विविधतापूर्ण भारतीय समाज की चुनौतियाँ क्या हैं?
- विविधता में एकता किस प्रकार सम्भव हुई है?

इस अध्याय के माध्यम से हम भारतीय समाज की संरचना एवं संस्कृति को समझते हुए इसकी विविधता एवं एकता के तत्त्वों को स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

समाजशास्त्र की मूलभूत अवधारणा है, समाज। समाज के शास्त्र अथवा समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के विज्ञान को समाजशास्त्र कहा जाता है। मूल प्रश्न यह है कि 'समाज' क्या है? 'समाज' नामक अवधारणा से हमारा परिचय जीवनारम्भ में ही हो जाता है। जैसे-जैसे जीवन यात्रा में मानव आगे बढ़ता है, उसका परिचय विस्तार एवं परिष्कार पाता रहता है। हजारों वर्षों से लोगों ने इन समूहों एवं समाजों का अवलोकन एवं उनके बारे में चिन्तन किया है, जिनमें वे रहते चले आ रहे हैं। चाहे कौटिल्य (चाणक्य) का 'अर्थशास्त्र' हो अथवा अरस्तू की 'पॉलिटिक्स' हो, चाहे शुद्रक का 'मृच्छकटिकम्' हो या फिर वैदिक साहित्य हो, सभी का मूल विषय मानव सहजीवन तथा तात्कालिक स्थितियाँ रही हैं।

इस सबके पीछे मूल कारण यह है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो संगठन एवं समूह का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करता है। वह एकाकी नहीं रह सकता। सामूहिकता मानव जीवन का आधार तथा सार है। वह समूह से नियंत्रित एवं निर्देशित भी होता रहता है।

समाज– सामान्य अर्थ में समाज को व्यक्तियों का एकत्रीकरण माना जाता है। समाजशास्त्रीय पहलू (परिप्रेक्ष्य) से देखा जाये तो समाज केवल मात्र व्यक्तियों का एकत्रीकरण न होकर इससे कहीं अधिक है। यह व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें इनके (व्यक्तियों) मध्य सामाजिक सम्बन्ध हों चाहे वह स्नेह, अपनापन, घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्धा, सहयोग, संघर्ष, व्यवस्थापन आदि में से कोई भी प्रकार के हों। समाज एक ऐसा संगठन है जो मनुष्य की क्रियाओं को स्वतंत्र एवं सीमित, नियमित एवं निर्देशित करता है। जीवन के प्रत्येक पहलू से इसका जुड़ाव होता है। जीवन की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिये समाज अपरिहार्य है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।

सम्बन्धों के जाल के सन्दर्भ में कहा जाये तो सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं।

एक सामाजिक सम्बन्ध तथा दूसरा भौतिक सम्बन्ध। जैसे कम्प्यूटर एवं मेज का सम्बन्ध, सड़क एवं मोटर गाड़ी का सम्बन्ध, पृथ्वी एवं सूर्य, नदी एवं समुद्र, आग एवं धुएँ आदि का सम्बन्ध। इसी प्रकार धुएँ एवं आँसू, श्वास, मोबाइल एवं व्यक्ति आदि के मध्य के सम्बन्ध, इनमें से प्रत्येक एक दूसरे के अस्तित्व पर प्रभाव डालता है। परन्तु यहाँ पर परस्परअ र्थपूर्णताक ाअ भावप ायाज ाताह ै ाय`स भीए क-दूसरेस` अर्थपूर्ण रूप से परिचित नहीं होते हैं। इनमें पारस्परिक आनुभाविकता का अभाव पाया जाता है, जिसके कारण इनके मध्य के सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार ''समाज का अस्तित्व वहीं सम्भव है, जहाँ सामाजिक प्राणी एक दूसरे के साथ इस प्रकार से व्यवहार करते हैं जो उनके पारस्परिक ज्ञान से निर्धारित होते हैं।

इस प्रकार निर्धारित सभी सम्बन्धों को हम मोटे तौर पर सामाजिक कह सकते हैं।''

सामाजिक शब्द व्यापक है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, राजनैतिक, वैयक्तिक, अवैयक्तिक, मित्रतापूर्ण, विरोधपूर्ण, संघर्ष, सहयोग, द्वेष, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक सभी पहलू सम्मिलित हैं। संघर्ष अथवा युद्ध के समय दो देशों की सेनाओं के मध्य के सम्बन्ध जो कि घोर विद्वेष अथवा संघर्ष के होते हैं, 'सामाजिक' हैं। परन्तु अधिकांश सामाजिक सम्बन्धों में सामुदायिकता या परस्पर सम्बन्ध होने की भावना विद्यमान होती है।

समाज मात्र मनुष्य तक ही सीमित नहीं है अपितु जैसा कि हम भली-भाँति जानते हैं कि चींटियों एवं मधुमक्खियों में सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन विद्यमान होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ जीवन है वहाँ समाज है। विभिन्न जातियों के पशुओं के मध्य भी समाज देखने को मिलता है। मनुष्य एवं कुत्ते, गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, भेड़, बकरी आदि के बीच में एक दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान अर्थात् पारस्परिकता का भाव देखने को मिलता है, जिससे समाज की उपस्थिति मानी जा सकती है।

हमारा उद्देश्य मात्र मनुष्य जाति में उपस्थित समाज में परिवर्तन का अध्ययन करने से है, जिसे हम 'मानव समाज' कहते हैं। 'मानव समाज' में समानता एवं भिन्नता दोनों होती हैं। भिन्नता के विद्यमान होने से ही विभेदीकरण एवं श्रम विभाजन के फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्ध जटिल एवं विस्तृत हुए हैं, अन्यथा ये भी चींटियों, मधुमक्खियों, बंदरों आदि की भांति सीमितता लिये होते। परन्तु ये भिन्नता, समानता के अधीन होती है। पहले सहयोग बाद में विभाजन होता है और ये विभाजन भी एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग करता है। इसका प्रमुख कारण है जैसे कि अरस्तू ने कहा है ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'' तथा मैकाइवर एवं पेज कहते हैं कि 'मनुष्य को अपनी सुरक्षा, सुविधा, पालन-पोषण, शिक्षा, साज-सज्जा, अवसर और समाज द्वारा दी जाने वाले अन्य अनेक सेवाओं के लिए ; (यहाँ तक कि शरीर और मस्तिष्क की अनेक बाधाओं के लिए ; भी समाज पर आश्रित रहना पड़ता है। समाज में जन्म लेना ही उसके लिये स्वयं समाज की पूर्ण आवश्यकता उत्पन्न कर देता है।''

भारतीय समाज–'समाज' एवं 'एक समाज' दो अवधारणाएँ हैं। 'समाज' एक व्यापक अवधारणा है, जिसका विश्लेषण हम कर चुके हैं। 'एक समाज' तुलनात्मक रूप से सीमितता लिए हुए हैं। 'एक समाज' किसी एक सामाजिक इकाई, जैसे 'एक जनजाति' अथवा 'एक देश' को इंगित करते है। इस इकाई की अपनी राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक तथा अन्य संस्थाएँ होती हैं जो अन्य एक समाजों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र एवं विशिष्ट होती हैं। अत: 'भारतीय समाज' 'एक समाज' का उदाहरण है।

भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलू

संरचना : संरचना शब्द की व्युत्पत्ति सम् (उपसर्ग) + रच् (धातु), + मुच् (प्रत्यय) = संरचना हुई है। रच् धातु का अभिप्राय प्रतियत्न अर्थात् गुणाधान पूर्वक प्रयत्न करने से है। इस प्रकार संरचना का अभिप्राय व्यवस्था, तैयारी, विन्यास, निर्माण, सृजन, निष्पति आदि से है। हम यहाँ संरचना का अर्थ विशिष्ट पद्धति से किसी इकाई की निष्पति से लेते हैं। अर्थात् गुणाधानपूर्वक परिष्कृत सृजन अथवा निर्माण। जैसे जल को उबालने से उसमें से सभी अशुद्धियाँ बाहर हो जाती है, उसी प्रकार परिष्कृत निर्माण को संरचना कहा जाता है।

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना का विश्लेषण करने से पहले आवश्यकता है कि सामाजिक संरचना क्या है? को स्पष्ट किया जाए। मॉरिस गिन्सबर्ग अपने लेख 'दि स्कोप एण्ड मेथ्ड ऑफ सोशियोलॉजी (1939)' में लिखते हैं कि ''समाज के संघटक प्रधान समूहों तथा संस्थाओं के जटिल सम्पूर्णता को सामाजिक संरचना कहा जाता है।'' एस.एफ. नैडल ने 'दि थ्योरी ऑफ सोश्यल स्ट्रक्चर' में लिखा है कि ''हम मूर्त जनसंख्या और उसके व्यवहार से एक दूसरे से सम्बद्ध भूमिकाओं का निर्वाह करने वाले कर्त्ताओं के बीच विद्यमान सम्बन्धों के जाल(अथवाॅ यवस्था)य ाप॒तिरूपक ीध ारणाब नाकरस माजक ी संरचना तक पहुँच सकते हैं।'' इसी प्रकार एच. गर्थ व सी. राइट मिल्स ने 'कैरेक्टर एण्ड सोश्यल स्ट्रक्चर' में लिखा है 'भूमिका की अवधारणा संस्थाओं की हमारी परिभाषा में आधार पद है। भूमिका वह इकाई है जिसके आधार पर हम सामाजिक संरचना के विचार का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार संस्था वह इकाई है, जिसके आधार पर हम सामाजिक संरचना की अवधारणा का निर्माण करते हैं।' टी.बी. वोटोमोर ने 'समाजशास्त्र : समस्याओं एवं साहित्य की संदर्शिका' (अनु. हरिश्चन्द्र उप्रेती) में स्पष्ट किया है कि ''समाज की प्रधान संस्थाओं व समूहों की जटिल सम्पूर्णता को सामाजिक संरचना माना जाना चाहिए।''

संक्षेप एवं सार रूप में सामाजिक संरचना को स्पष्ट किया जाए तो कहा जा सकता है कि यह किसी समूह के आंतरिक संगठन के स्थाई प्रतिमान अर्थात् समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले सामाजिक संबन्धों का सम्पूर्ण ताना-बाना होता है इन सम्बन्धों में सामाजिक क्रियाएँ, भूमिकाएँ, प्रस्थितियाँ, संचार व्यवस्था, श्रम विभाजन तथा आदर्शात्मक व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक संरचना को 'स्वरूप' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'संरचना' किसी व्यवस्था के स्थिर पक्ष

को प्रतिबिम्बित करती है।

भारतीय समाज की संरचना में गाँव, कस्बा, नगर, जनजातियाँ, कमजोर वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक आदि अंगभूत घटक हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है–

गाँव– भारतीय गाँव, भारतीय समाज की संरचना का आधारभूत अंग है। बिना गाँव के भारतीय समाज की परिकल्पना संभव नहीं होती। भारत कृषि प्रधान गाँवों का देश है। यहाँ गाँवों की कुल संख्या 6,40,867 (भारत की जनगणना 2011) है। भारत की कुल जनसंख्या 1,21,08,54,977 (2011) है जिसमें से 68.84 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में तथा 31.16 प्रतिशत नगरीय क्षेत्र में निवास करती है।

गाँव अथवा ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है, जहाँ कृषि की प्रधानता, प्रकृति से समीपता, प्राथमिक सम्बन्धों की बहुतायत, कम आबादी, एकरुपता, स्थिरता, विभिन्न मसलों पर सामान्यत: सहमति, आदि विशेषताएँ होती हैं। भारत गाँवों का देश है यद्यपि विगत दशक (2001–2011) में नगरीय आबादी बढ़ी है। भारतीय गाँव एक इकाई है। प्रत्येक गाँव लोगों का एक समूह है, जो एक निश्चत भू–क्षेत्र में बसा होता है और जोक ुछद ूरीप रब सेए ेसेग ाँवस ेि भन्नह ोताह ै।ग ाँवक ीप ृथकता, यातायात की कमी, अधिकतर आबादी की कृषि पर निर्भरता, लोगों की परस्पर निर्भरता, समुदाय के साझा अनुभव एवं परम्पराएँ, ग्राामीण उत्सव एवं त्यौहारों का अलग महत्व, गाँव का एक ग्राम देवता आदि विशेषताएँ गाँव की एकता को स्वाभाविक बनाती हैं। भारत में राजस्व, प्रशासन, राजनीति, पोस्टऑफिस की दृष्टि से प्रत्येक गाँव एक इकाई है। अधिकाँश गाँव बहुजातीय है, इनमें जातीय स्तरीकरण पाया जाता है। स्तरीकरण में प्रत्येक जाति अपने स्तर को दूसरी जाति की तुलना में स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में सामान्यत: कोई विवाद नहीं होता है। प्रत्येक गाँव में कोई न कोई प्रभु जाति अवश्य होती है जो ग्रामीण व्यवस्था पर नियंत्रण रखती है। गाँवों में जजमानी प्रथा पायी जाती है, जिससे विभिन्न जातियाँ एक–दूसरे की सेवा प्राप्त करती हैं और गाँव को आत्मनिर्भर बनाती हैं। यद्यपि नगरीकरण के प्रभाव से अब गाँवों में भी सेवा के बदले सेवा (सेवाविनिमय) के स्थान पर मुद्रा के बदले सेवा का प्रचलन प्रारम्भ होने लगा है। फिर भी गाँव में अभी भी उदग्र (लम्बवत) एकता देखने को मिलती है।

डी. एन. मजूमदार गाँव को जीवन विधि व एक अवधारणा के रूप में परिभाषित करते हैं। इस कारण गाँव के सभी निवासियों की एक संगठित जीवन–निधि, विचार, साझा अनुभव तथा संस्कृति होती है। प्रत्येक गाँव का अपना एक इतिहास होता है जो प्राय: उसके नाम के साथ जुड़ा होता है। गाँव के नातेदारी सम्बन्ध आस–पास के गाँवों में होते हैं। गाँव की बेटियों का विवाह दूसरे गाँवों में होता है, जबकि बहुएँ दूसरे गाँवों से आती हैं। परिवार की परम्पराएँ और मूल्य उनके साथ जुड़े होते हैं। सभी गाँव एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। गाँव में समानताओं के अधीन विभिन्नताएँ भी विद्यमान होती हैं। गाँव में जातियों एवं उपजातियों के आधार पर मोहल्ले बने होते हैं। उच्च एवं निम्न जातियों के व्यवहार, आय, जीवनशैली, आवास, आपसी सम्बन्ध, बोली, स्वच्छता, विचार, विश्वास में पर्याप्त विभेदप ायेज ातेह ैं।व र्तमानस मयम ेंग ाँव,उ च्चए वं नि म्नज ातियाँ परिवर्तन के दौर में हैं, जिससे ये विभेद सिमटते दिखाई दे रहे हैं। सभी प्रकार की विभेदकारी विभिन्नताओं के होते हुए भी दीर्घकालीन सहजीवन के कारण तथा एक–दूसरे पर आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक अन्तर्निर्भरता के चलते सहयोग एवं आदान–प्रदान से गाँव एक संगठित इकाई के रूप में दिखाई देता है।

भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन अनेक विद्वानों ने किया है, जिनमें श्यामाचरण दुबे, एम.एन. श्रीनिवास, मैक्किम मैरियट, मिल्टन सिंगर, रॉबर्ट रेडफील्ड, डी. एन. मजूमदार, बी.आर. चौहान आदि मुख्य हैं। भारत में प्रादेशिक आधार पर गाँव की सामाजिक संरचना में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उत्तर भारत के गाँव, मध्य एवं दक्षिण भारत के गाँव से कई अर्थों में भिन्नता लिए हुए हैं। इन सबके होते हुए भी भारत के सभी गाँव में कुछ सामान्य विशेषताएँ समान रूप से विद्यमान है।

कस्बा– जनसंख्या आकार, घनत्व आदि के आधार पर नगरीय बस्तियों को कई भागों में विभक्त किया गया है, उनमें से एक कस्बा (Town) है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कस्बे की परिभाषा–(क) नगरपालिका, नगर निगम, छावनी बोर्ड या अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति आदि सहित सभी सांविधिक स्थान।

(ख) ऐसा क्षेत्र जो एक साथ निम्नलिखित तीनों शर्तों को पूरा करता हो–

(i) कम से कम 5,000 की जनसंख्या कार्यरत

(ii) कम से कम 75 प्रतिशत कार्यरत पुरुष गैर–कृषि कार्यकलापों में लगे हों; और

(iii) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर (1000 प्रति वर्ग मील हो)

जनगणना 2011 के अनुसार भारत में 7,935 कस्बे हैं जिनकी संख्या 2001 में 5,161 थी।

नगर– कस्बा भी नगरीय क्षेत्र ही है, किन्तु वह नगर की तुलना में छोटा होता है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार नगरीय क्षेत्र के अन्तर्गत अधिसूचित कस्बे, जनगणना कस्बे तथा बाह्य विकास (Out Growth) को सम्मिलित किया जाता है।

2011 की जनगणना के अनुसार 'भारत में नगरीय क्षेत्र'

क्र.सं.	कस्बा/नगरीय समूह/ बाह्य विकास	संख्या	
		2011 की जनगणना	2001 की जनगणना
1.	अधिसूचित कस्बे (Statutory Towns)	4,041	3,799
2.	जगणना कस्बे (Census Towns)	3,984	1,362
3.	नगरीय समूह (Urban Agglomerations)	475	384
4.	बाह्य विकास (Out Growth)	981	962

भारतीय नगर, गाँवों से अलग जीवन जीने का एक विशिष्ट ढंग और विशिष्ट संस्कृति का सूचक है। यहाँ जनसंख्या एवं जनघनत्व अधिक पाया जाता है। व्यवसायों, उपभोगवाद, दिखावा, व्यस्तता, जटिल सामाजिक संरचना, गतिशीलता के साथ बेकारी, अपराध, नशाखोरी, भिक्षावृत्ति, वैश्यावृत्ति, गँदगी, प्रदूषण, भीड़-भाड़, अनियंत्रित यातायात आदिस मस्याएँभ िभ ारतीयन गरोंक िप हचानम ेंस म्मिलितह ैं।य हाँ परिवार, पड़ौस एवं नातेदारी का अधिक महत्व नहीं रह गया है।

जाति

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति नाम की संस्था सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठी एवं विशिष्ट संस्था है जो भारत से बाहर इस रूप में कही भी देखने को नहीं मिलती है।

जाति नामक अवधारणा की व्युत्पत्ति संस्कृत की जनी धातु तथा क्तिन् प्रत्यय के संयोग से हुई है। जनी धातु, जन् धातु में परिवर्तित हुई तथा क्तिन् प्रत्यय ति प्रत्यय में बदला। जन्+ति में ति के रहते हुए न्, आ में बदल जाता है इस प्रकार जाति शब्द की व्युत्पत्ति हुई। जनी अथवा जन् का अभिप्राय जन्म लेना, निकलना, प्रकट होना, प्रादुर्भाव होना, अस्तित्व में आना तथा ति प्रत्यय भाव में है। इसका अर्थ क्रिया के सम्बन्ध में है। अर्थात् जाति शब्द का अभिप्राय अस्तित्व में आने के सम्बन्ध में है।

डॉ. गोविन्द सदाशिव घुर्ये ने 'कास्ट, क्लास ऐण्ड ऑक्युपेशन' में जाति की छः विशेषताएँ बताई हैं–

1. समाज का खण्डात्मक विभाजन 2. संस्तरण

3. भोजन तथा सामाजिक संसर्ग पर प्रतिबन्ध

4. विभिन्न जातियों की सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएँ तथा विशेषाधिकार

5. पेशों के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव

6. विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध।

जाति अन्तर्विवाह को वेस्टरमार्क ने 'जाति प्रणाली का सार तत्व' कहा है।

भारत में वर्तमान में 3000 जातियाँ तथा 25,000 उपजातियाँ हैं। जातियाँ केवल हिन्दु धर्म तक ही सीमित नहीं है अपितु भारतीय मुस्लिम तथा ईसाई धर्म में भी अस्तित्व में हैं।

कमजोर वर्ग

सामाजिक-आर्थिक मापदण्डों के आधार पर अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, लघु एवं सीमांत कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, बंधुआ मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर वर्ग के अन्तर्गत माना गया है। इस दृष्टि से देश की लगभग आधी आबादी इस श्रेणी में सम्मिलित है।

जनजाति

जाति की भांति ही जनजाति भारतीय सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण घटक है। **डी.एन. मजूमदार** ईस्टर्न एन्थ्रोपॉलोजिस्ट, सितम्बर 1958 में लिखते हैं कि "जनजाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसका एक भौगोलिक क्षेत्र होता है, जो अन्तर्विवाही है, जिसमें कार्यों का विशेषीकरण नहीं होता जो जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित होता है, जिसकी एक भाषा या बोली होती है, जो अन्य जनजातियों या जातियों से सामाजिक दूरी स्वीकार करता है, जो अपनी जनजातीय परम्पराओं, विश्वासों और प्रथाओं को मानता है और जो जातीय और क्षेत्रीय एकीकरण की एकरुपता के प्रति जागरुक होता है।"

भारतीय संविधान में संविधान (अजजा) आदेश, 1950 में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 744 बताई गई है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,21,05,69,573 है जिसमें जनजातीय आबादी 10,42,81,034 है। जो कि कुल आबादी का 8.61 प्रतिशत है।

21 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के 90 जिलों में जनजातीय आबादी कुल आबादी के 50 प्रतिशत से अधिक है तथा 25 प्रतिशत से अधिक एवं 50 प्रतिशत से कम जनजातीय आबादी वालों जिलों की संख्या 62 है। (जनगणना 2011)

अनुसूचित जातियाँ– 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1935 में साइमन कमीशन द्वारा किया गया था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हें 'भग्न पुरुष (Brokenmen)' या 'बाह्य जाति (OutCaste)' माना जाता था। ब्रिटिश लोगों द्वारा उन्हें दलित वर्ग (Depressed class) कहा जाता था। 1931 की जनगणना में उन्हें 'बाहरी जाति' (Exterior Caste) के रूप में सम्बोधित किया गया। महात्मा गांधी ने उन्हें 'हरिजन' के नाम

से पुकारा। सन् 1935 के विधान में इन वंचित दलित लोगों को कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक अनुसूची निर्मित की गई। इसी अनसूची के आधार पर वैधानिक परिप्रेक्ष्य से इनके लिए 'अनुसूचित जाति' (Scheduled Caste) अवधारणा को काम में लिया जाने लगा।

संविधान के अनुच्छेद 341 में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में उन जातियों, मूल वंशों या जनजातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनके समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिये यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 342 में यह प्रावधान है कि किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में उन जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनके समूहों को विर्निदिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाएगा। इन प्रावधानों के अनुसरण में अनुसूचित जातियों और/या अनुसूचित जनजातियों की सूची को प्रत्येक राज्य और संघ राज्य क्षेत्र के लिए अधिसूचित किया गया है और यह केवल सम्बन्धित राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के क्षेत्राधिकार में ही मान्य है, उससे बाहर नहीं।

भारत के संविधान की धारा 341 के तहत भारत सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य एवं संघ राज्य के लिए अनुसूचित जातियों को अधिसूचित किया गया है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 16.6प्रतिशत अनुसूचित जातियों की आबादी है। संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 में कुल 1108 अनुसूचित जातियाँ थीं, जो कुल 29 राज्यों (केन्द्रशासित प्रदेशों सहित) में निवास कर रही थीं।

अन्य पिछड़े वर्ग

आदिवासी समूहों, अनुसूचित जनजातियों तथा अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त भी कुछ जातियाँ भारतीय सामाजिक संरचना में ऐसी हैं, जिनकी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रस्थिति समाज के सम्पन्न वर्गों की तुलना में कमजोर तथा निम्नतर है, उन्हें 'अन्य पिछड़े वर्ग' के नाम से संबोधित किया जाता है। भारतीय संविधान के भाग 16 तथा अन्य कुछ प्रावधानों में पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों और जनजातियों के साथ 'अन्य पिछड़े वर्गों' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सन् 1977 में मण्डल आयोग का गठन किया गया, जिसने 30 अप्रैल 1982 को अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की। इस हेतु आयोग ने पिछड़ेपन के तीन आधार (सूचक) माने हैं- सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक। आयोग ने 3,743 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित किया जिनकी जनसंख्या देश की आबादी की 52 प्रतिशत थी। इसी अनुपात में 52 प्रतिशत स्थान इन जातियों हेतु आरक्षित करने की बात कही परन्तु संविधान की धारा 15(4) और 16(4) के अनुसार, 50 प्रतिशत से अधिक स्थान आरक्षित नहीं किये जा सकते और अनुसूचित जातियों (15 प्रतिशत) तथा अनुसूचित जनजातियों (7.5 प्रतिशत) के लिए पहले से ही 22.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित है, अत: संविधान के प्रावधानों के कारण पिछड़ी जातियों के लिए नौकरियों एवं शिक्षण संस्थाओं में 27 प्रतिशत स्थान ही आरक्षित करने की सिफारिश की। 7 अगस्त 1990 को तत्कालीन जनता दल सरकार ने इसे लागू करने की अधिसूचना जारी की। अक्टूबर, 1990 को न्यायालय द्वारा इस पर स्थगन आदेश जारी हुआ तत्पश्चात् 16नवम्बर, 1992 को सर्वोच्च न्यायालय ने इसे चिकनी परत के प्रावधान के साथ उचित करार दिया। केन्द्र सरकार ने इसकी पालना में 8 सितम्बर

भारतीय समाज की धार्मिक संरचना 1951 से 2011 तक (प्रतिशत में)

धार्मिक समूह	सन् 1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
हिन्दू	84.1	83.45	82.73	82.30	81.53	80.46	79.80
मुस्लिम	9.8	10.69	11.21	11.75	12.61	13.43	14.23
ईसाई	2.3	2.44	2.60	2.44	2.32	2.34	2.30
सिक्ख	1.79	1.79	1.89	1.92	1.94	1.87	1.72
बौद्ध	0.74	0.74	0.70	0.70	0.77	0.77	0.70
जैन	0.46	0.46	0.48	0.47	0.40	0.41	0.37
पारसी	0.13	0.09	0.09	0.09	0.08	0.06	N/A
अन्य/कोई धर्म नहीं	0.43	0.43	0.41	0.42	0.44	0.72	0.9

2011 की जनगणना में 28लाख 70 हजार लोगों ने कोई धर्म नहीं (कुल का .24 फीसदी) का विकल्प चुना।

1993 से 27 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया। राजस्थान में 'अन्य पिछड़े वर्ग' के लिए 21 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था है।

भारतीय परिवार– डॉ. श्यामा चरण दुबे 'मानव और संस्कृति' में अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और इनमें निकट का नाता हो, यदि वे एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक ही आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों, तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप को संयुक्त परिवार कहा जा सकता है। संयुक्त परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे, दादा-दादी, चाचा-चाची, चचेरे भाई-बहिन, चचेरे भाइयों की पत्नियाँ और बच्चे, विधवा बहिनें आदि सम्मिलित होते हैं।"

भारतीय समाज में सम्बन्धों के आधार पर दो प्रकार के परिवार पाए जाते हैं।

1. विवाह सम्बन्धी परिवार और 2. जन्म सम्बन्धी परिवार

1. विवाह सम्बन्धी परिवार– इस परिवार को दाम्पत्यमूलक परिवार भी कहा जाता है। इसके केन्द्र में पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे होते हैं, साथ ही विवाह के आधार पर बने कुछ अन्य रिश्तेदार भी ऐसे परिवार के सदस्य होते हैं। ऐसे परिवार भारतीय समाज में सब जगह पाये जाते हैं। विशेषकर अनेक जनजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं, जैसे खरिया जनजाति में।

2. जन्म (रक्त) सम्बन्धी परिवार– ऐसे परिवार जिसमें व्यक्ति जन्म से परिवार का सदस्य होता है। ऐसे परिवारों को रक्त सम्बन्धी परिवार भी कहते हैं। ऐसे परिवार में भाई-बहिन, चाचा, ताऊ, दादा-दादी, माता-पिता, पुत्र-पुत्रियाँ आदि निवास करते हैं। भारतीय समाज के अधिकांश परिवार इसी श्रेणी में सम्मिलित होते हैं।

भारतीय समाज के साँस्कृतिक पहलू

धर्म– भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता उसकी साँस्कृतिक विविधता है। भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं के लोग निवास करते हैं। हिन्दू धर्म (सनातन धर्म) को मानने वाल लोग यहाँ बहुसंख्यक हैं जबकि मुस्लिम, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि अल्पसंख्यक हैं। सन् 1957 में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल के शिक्षक विधेयक के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक समूह उस समूह को माना जिनकी संख्या राज्य में 50 प्रतिशत से कम है।भारतीय समाज में एकल या नाभिकीय परिवारों की स्थिति एवं संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर अग्रसरता पर भी संक्षेप में चर्चा अपेक्षित है।

विवाह

विवाह परिवार की आधारशिला है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, सन्तानोत्पत्ति एवं बालकों का पालन-पोषण करता है तथा उन्हें समाज का उपयोगी सदस्य बनाता है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को भारतीय विवाह ने विश्व में अनूठी संस्कृति बनाया है। सात जन्मों के साथ/जन्म जन्मान्तर के बन्धन की अवधारणा ने विवाह को एक संस्कार के रूप में मान्यता प्रदान की है। मनु ने कहा है कि जैसे सब प्राणी प्राण वायु के सहारे जीवित रहते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण समाज गृहस्थाश्रम से जीवन प्राप्त करता है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करता है। विवाह (भारतीय) एक धार्मिक संस्कार के रूप में जीवन को स्थायित्व प्रदान करता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी निश्चित रूप से पति का अर्द्धांश है, अतः जब तक पुरुष पत्नी प्राप्त नहीं करता एवं संतान उत्पन्न नहीं करता, तब तक वह पूर्ण नहीं होता। भारतीय समाज व संस्कृति में विवाह प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आवश्यक संस्कार माना गया है। इसलिए वेद आदेश देते हैं कि पुरूष को अपनी पत्नी के साथ ही धार्मिक कार्य सम्पन्न करने चाहिए।

विवाह के अन्तर्गत वे सभी समारोह एवं कर्मकाण्ड सम्मिलित होते हैं, जिनके माध्यम से लड़का-लड़की समाज द्वारा स्वीकृत पति-पत्नी के सम्बन्धों में बंधते हैं और एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्यों एवं अधिकारों को निभाते हैं। मेघातिथ के अनुसार 'विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए एक निश्चित क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों, से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है, जिसकी अंतिम विधि सप्तर्षि दर्शन है।' इस प्रकार समाज द्वारा स्वीकृत विधि विधान के माध्यम से पति-पत्नी के सम्बन्धों में बंधने को ही विवाह कहा जाता है। भारतीय समाज में धर्म तथा प्रजा का माध्यम है विवाह। हिन्दू विवाह अधिनियम के द्वारा भी एक विवाह को ही स्वीकृति दी गई है। भारतीय समाज में व्यक्ति के लिए पाँच प्रकार के ऋणों की परिकल्पना की गई है, जिनसे उऋण होना ही व्यक्ति का लक्ष्य होता है, ये पाँच ऋण देव, ऋषि, पितृ, अतिथि तथा भूत ऋण है जिनसे उऋण होने के लिए परिवार का निर्माण करना एक आवश्यक शर्त है जो कि विवाह के द्वारा ही संभव है। इसी के माध्यम से व्यक्ति चार पुरुषार्थों की पूर्ति करता है। धर्म के बिना संस्कृति की कल्पना कठिन है तथा विवाह के बिना भारतीय समाज में धर्मानुसार आचरण संभव नहीं माना गया है। कालिदास ने 'कुमारसंभव' में उल्लेख किया है कि कामदेव को जीतने वाले शिवजी ने जब सप्तर्षि और अरुंधति को अपने सामने देखा तो अरुंधति से विवाह की उनकी इच्छा हुई कारण कि धर्मसम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करने के लिए पतिव्रता स्त्री की आवश्यकता होती है। पत्नी को धार्मिक कार्यों में इसी महत्ता के कारण 'धर्म-पत्नी' कहा जाता है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है, ये कर्तव्यों के रूप में समाज में विद्यमान रहे हैं। इन यज्ञों के सम्पादन हेतु पत्नी का होना अनिवार्य होता है। पंच महायज्ञों की अवधारणा भारतीय संस्कृति में रही है–ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ तथा अतिथि यज्ञ। पत्नी के अभाव में अविवाहित व्यक्ति ये यज्ञ नहीं कर सकता।

भारत में सातवीं शताब्दी में इस्लाम का आगमन हुआ और इस्लाम वर्तमान में भारत का दूसरा सबसे बड़ा धर्म (14.23 प्रतिशत) है। इस्लाम में विवाह को 'निकाह' कहते हैं। मुस्लिम कानून के अनुसार विवाह एक सामाजिक या बिना शर्त का दीवानी समझौता है, जिसका उद्देश्य घर बसाना, संतानोत्पत्ति और उन्हें वैधता प्रदान करना है।

मुस्लिम विवाह के चार प्रमुख प्रकार हैं–

(i) निकाह (ii) मुताह (iii) फासिद तथा (iv) बातिल विवाह। इनमें से 'निकाह' को सही विवाह कहा जाता है।

वर्तमान में भारत में तीसरा बड़ा धार्मिक समूह ईसाई (2.3 प्रतिशत) है। ईसाई विवाह भी एक समझौता है। क्रिश्चियन बुलेटिन के अनुसार ''विवाह समाज में एक पुरुष और स्त्री के बीच एक समझौता है, जो साधारणत: सम्पूर्ण जीवनभर के लिए होता है और इसका उद्देश्य पारस्परिकस हयोगअ ौरप रिवारक ोस् थापनाक रनाह ै।'इ ंसाइयोंम ें विवाह एक स्थायी समझौता माना जाता है, इस्लाम की तरह अस्थायी नहीं।

नातेदारी

सामाजिकरू पस ेम ान्यताप्र ाप्तअ थवास् वीकृतए ेसेस म्बन्ध नातेदारी कहलाते हैं जो रक्त, विवाह एवं दत्तकता पर आधारित होते हैं। भारत की नातेदारी व्यवस्था का विस्तृत उल्लेख श्रीमती इरावती कर्वे ने अपनी पुस्तक 'भारत में बन्धुत्व संगठन' में भौगोलिक तथा भाषायी संदर्भ में विस्तारपूर्वक किया है।

1. भौगोलिक आधार–इरावती कर्वे ने इस आधार पर सम्पूर्ण भारत की नातेदारी व्यवस्था को चार भागों में बाँटा है।

(अ) उत्तरी क्षेत्र–हिमालय से विन्ध्याचल तक सिन्ध, पंजाब, कश्मीर, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, नेपाल।

(ब) मध्य क्षेत्र–राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र

(स) दक्षिणी क्षेत्र–कर्नाटक, मालाबार, तेलंगाना, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी उड़ीसा व दक्षिणी बिहार

(द) पूर्वी क्षेत्र–बर्मा, तिब्बत, असम एवं पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र

2. भाषायी आधार–श्रीमती कर्वे ने इस आधार पर नातेदारी व्यवस्था को तीन भागों में बाँटा है–

(अ) भारोपीय परिवार–पंजाबी, सिन्धी, बिहारी, हिन्दी, बंगाली, असमी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया एवं कोंकणी।

(ब) द्रविड़ परिवार–तेलुगू, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तूलू, टोडा, कोडागू, कोलामी, गोण्डी।

(स) आग्नेय एशियाटिक परिवार–मुण्डी, सओरा, संथाली, खासी गड़बा, भूमिया, ज्वांग बोंडो आदि

श्रीमती इरावती कर्वे के अतिरिक्त भारत में नातेदारी व्यवस्था पर ए. सी. नय्यर, मदान, ई. के. गॅफ, मैकोमेक, लुई ड्यूमा आदि ने अध्ययन किए हैं। श्रीमती लीला दुबे ने 'सोश्योलॉजी ऑफ किनशिप' शीर्षक से एक पुस्तक की रचना की है, जिसमें भारत में नातेदारी सम्बन्धों सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों की चर्चा की है।

नातेदारी व्यवस्था ही समाज में विवाह एवं परिवार के स्वरूप, वंश, उत्तराधिकार एवं पदाधिकार का निर्धारण, आर्थिक हितों की सुरक्षा, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन सम्बन्धी व्यवस्था का निर्धारण एवं सृजन करती है।

परम्पराएँ

हमारे पूर्वजों द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, विश्वासों व कार्य करने के तरीकों को जो हमें विरासत में मिले हैं, परम्परा के अन्तर्गत सम्मिलित होते हैं। योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' में भारत के सन्दर्भ में परम्परा की अवधारणा का निर्माण निम्न विशेषताओं के आधार पर किया है–

1. सामूहिक सम्पूर्णता
2. संस्तरण
3. परलोकवादी
4. निरंतरता

1. सामूहिक सम्पूर्णता– इसर्म ावशेषताम ें ०यक्तिग ौणत था समूह प्रमुख होता है। भारतीय समाज की प्रमुख संस्थाओं जैसे-जाति, परिवार, ग्राम, नातेदारी आदि व्यवस्थाओं में प्रधानत: परिलक्षित होने वाला परमार्थ का भाव अथवा मैं नहीं हम या आप का चिन्तन इसी विशेषता से अनुप्राणित होता है। संयुक्त परिवार की व्यवस्था में परिवार के प्रति उत्तरदायित्व को अधिक बल दिया जाता है न कि व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को। इसी प्रकार की भावना जाति, गाँव एवं नातेदारी (स्वजन) के सम्बन्ध में रहती है।

2. संस्तरण– स्तरीकरण भारतीय समाज में प्रधानत: कर्म एवं गुण दोनों क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। कर्म के आधार पर वर्णों की रचना

हुई जो कालान्तर में स्थाई होकर जाति में रुपान्तरित हो गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का विभाजन वैदिककाल से कर्मों के आधार पर संस्तरणात्मक रूप में रहा है। कर्म अर्जित प्रस्थिति थी जबकि जाति एक प्रदत्त प्रस्थिति (हैसियत) के रूप में विद्यमान है। जाति व्यक्ति को समाज में एक प्रस्थिति (हैसियत) प्रदान करती है जो अन्य की तुलना में उच्च अथवा निम्न हो सकती है। भारत में विभिन्न जातियों का जन्म तथा नयी जातियों का उद्भव एक सतत् प्रक्रिया है। शैक्षणिक उपनिवेशवाद से प्रभावित हमारे भारतीय समाजशास्त्री इस क्षेत्र में अध्ययन से कतराते रहे हैं।

गुणों के आधार पर संस्तरण के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था रही है। भारतीय परम्परा में तीन प्रकार के गुण माने गए हैं–सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। इनमें से तीन भाव अथवा प्रवृत्तियां विकसित होती हैं–सात्विक, राजसिक, तामसिक। भारतीय परम्परा में जीवन के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं ये हैं–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। काम, भौतिक व इन्द्रियपरक सुखों की पूर्ति का लक्ष्य तथा सन्तानोत्पत्ति के माध्यम से समाज की निरंतरता को बनाए रखने का लक्ष्य। अर्थ, आर्थिक उपयोगितावादी लक्ष्य, जीवन को चलाने के लिए आवश्यक साधनों की आपूर्ति का माध्यम। धर्म, सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने का नैतिक आधार है जिसके आधार पर समाज एवं संस्कृति दीर्घकालिक जीवन पाती है। मोक्ष, मुक्ति की प्राप्ति का परम लक्ष्य है जिसके माध्यम से व्यक्ति जीवन चक्र (जन्म-मृत्यु) के बन्धन से मुक्त हो जाता है। संस्तरण के क्रम में मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम इस तरह नियोजित रहते हैं।

चार लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आश्रम व्यवस्था का सृजन किया गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम सम्पूर्ण जीवन अवधि को चार भागों में विभक्त कर चार लक्ष्यों की प्राप्ति का संस्थात्मक तथा मानदण्डात्मक आधार प्रस्तुत करते हैं।

3. परलोकवादी– भारतीय तत्व ज्ञान का सार रूप है परलोकवाद अथवा पारलौकिकता की अवधारणा। इस भौतिक एवं नश्वर संसार के अतिरिक्त एक दूसरे लोक की परिकल्पना भारतीय मेधा के द्वारा की गई है जिसकी सदस्यता व्यक्ति के लिये मृत्यु उपरान्त मिलती है तथा उसका आधार जीवित रहते किये गये कर्म होते हैं। मानव जीवन को संयमित, नियंत्रित एवं निर्देशित करने के लिये यह विलक्षण अवधारणा है। मोक्ष का लक्ष्य व सन्यास आश्रम, परलोकवाद का संस्थात्मक सांस्कृतिक स्वरूप है।

4. निरन्तरता– निरन्तरता, परम्परा का मूलभूत आधार है। लौकिक एवं पारलौकिक व्यवहार, विचार तथा मूल्यों की निरन्तरता ने ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम अस्तित्ववान सभ्यता, संस्कृति के रूप में ख्याति प्रदान की है। परम्पराओं की निरन्तरता तीन स्रोतों तथा स्वरूपों के रूप में हमें दिखाई देती है–

(अ) प्राचीन सभ्यताएँ

(ब) शास्त्रीय परम्पराएँ

(स) लोक परम्पराएँ

(अ) प्राचीन सभ्यताएँ– सिन्धु घाटी की सभ्यता, मिस्र की सभ्यता, इराक-ईरान की सभ्यता। इन सभ्यताओं के अवशेषों से हम तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का अनुमान लगा सकते हैं।

(ब) शास्त्रीय परम्पराएँ– सर्वाधिक प्रमाणिक स्रोत है यह परम्पराओं का। प्राचीन साहित्य जैसे वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पतञ्जलि का महाभाष्य, लोकायत, कालिदास का साहित्य, वात्स्यायन का साहित्य, जातक साहित्य तथा पाणिनि, चरक, नागार्जुन आदि की साहित्य रचना जिसे हम वृहद् परम्परा कह सकते हैं, से हमें उस समय की सामाजिक संरचना तथा निरन्तरता की जानकारी प्राप्त होती है।

(स) लोक परम्पराएँ– ये शास्त्रीय परम्पराओं की भाँति लिखित न होकर मौखिक होती हैं। जहाँ शास्त्रीय परम्पराओं के रचनाकार संभ्रांत वर्ग के लोग होते थे वहीं लोक परम्पराओं के उद्गम स्रोत एवं वाहक स्थानीय गाँव, ढाणी, कबीले के लोग होते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक सीमित क्षेत्र में मौखिक रूप से हस्तान्तरित होती रहती है। लोक जीवन (ग्राम्य जीवन) में संयम, सुरक्षा तथा स्थायित्व के लिए देशज लोगों ने लोक देवता, लोक कथा, लोकोक्तियों, कविताएँ तथा हिसाब-किताब की अपनी विधियों विकसित कर रखी हैं। ये सब उनके लोक चातुर्य का परिणाम है। भारतीय समाज में समृद्ध लोक परम्परा का इतिहास रहा है। विविधतापूर्ण समाज की निरन्तरता में लोक परम्पराओं जिनको लघु परम्पराएँ कहा जाता है ने महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित की है।

इन्द्रदेव का मानना है हमें भारत की लोक परम्परा में निहित चिंतन तथा दर्शन को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है।

परम्पराएँ, परिवर्तन की विरोधी नहीं है जैसा कि इन्हें समझा जाता है। इनमें निरन्तर बदलाव समय एवं परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार होता रहता है। अपने मूल स्वरूप को बरकरार रखते हुए परम्पराएँ 'सुधार के लिए संघर्षरत' रहती हैं।

कर्म तथा पुनर्जन्म– शास्त्रीय परम्पराओं (वृहत् परम्पराओं) तथा लोक परम्पराओं (लघु परम्पराओं) दोनों में ही यह बताया गया है कि सत्कर्म (अच्छे कर्म) का परिणाम अच्छा और कुकर्म (बुरे कर्म) का फल बुरा होता है। मानव के जन्म का निर्धारण ही उसके पिछले जन्म में किए गए कर्म के आधार पर होता है। सभी भारतीय शिक्षित, साक्षर, निरक्षर यह

जानते हैं तथा मानते हैं कि शरीर नश्वर (नाशवान) है, परन्तु आत्मा अमर है। शरीर पर धारण किए (पहने) जाने वाले वस्त्रों की भांति ही मृत्यु उपरान्त आत्मा भी नया शरीर धारण करती है। कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय समाज में व्यक्ति को नई दिशा प्रदान करता है, उसे समाज द्वारा निर्धारित दायित्व के निर्वाह के लिए प्रेरित करता है। भारतीय समाज को सामाजिक संगठन की निरन्तरता, स्थिरता तथा नियंत्रण की समस्या से मुक्त रखने में कर्म एवं पुर्नजन्म की अवधारणा ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

'कर्म' शब्द की व्युत्पति 'कृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'करना', 'व्यापार' अथवा 'हलचल', 'गतिविधि'। अर्थात् मनुष्य जो कुछ भी करता है वह कर्म है। कर्म का सम्बन्ध संस्कृत भाषा के शब्द 'कर्मन' से है जिसका अर्थ कर्तव्य, कार्य, क्रिया, कृत्य या दैव से है। इस संदर्भ में कर्म का अभिप्राय उन सभी क्रियाओं से है जो मनुष्य अपनी भूमिकाओं के निर्वहन में करता है। गीता के अनुसार व्यक्ति तीन प्रकार से क्रियाएँ करता है। मन से (मनसा), वाणी से (वाचा) और शरीर से (कर्मण)। ये तीनों ही कर्म है।

भारतीय समाज में तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं–

1. संचित कर्म 2. प्रारब्ध कर्म और 3. क्रियमान अथवा संचीयमान कर्म।

1. संचित कर्म– वे क्रम जो व्यक्ति द्वारा पिछले जन्म में किए गए हैं।

2. प्रारब्ध कर्म– पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल जो व्यक्ति वर्तमान जन्म में भुगत रहा है, प्रारब्ध कर्म है।

3. क्रियमान कर्म– व्यक्ति द्वारा वर्तमान जन्म में जो कर्म किए जा रहा हैं जिनका संचय वह अब कर रहा है ये उसके 'क्रियमान अथवा संचीयमान कर्म' है। व्यक्ति का अगला जन्म अर्थात् पुनर्जन्म इन्हीं संचित या क्रियामान कर्मों पर निर्भर करता है। वेदों में स्पष्ट किया गया है कि आत्मा अमर है शरीर नाशवान है। मानव का उस समय तक पुनर्जन्म होता रहता है जब तक कि वह अमरत्व प्राप्त नहीं कर ले अर्थात् स्वयं को ब्रह्म में विलीन नहीं कर लेता। जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिये सद्कर्मों पर जोर दिया गया है। कर्म एक जागरुक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मानव विभिन्न पुरुषार्थों को पूरा करता है। मानव के कर्म ही सर्वोच्च पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है तथा कर्म ही व्यक्ति के जन्म-मरण के चक्र (पुनर्जन्म) में फंसे रहने का कारण माने गये हैं।

कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त इसकी भी व्याख्या करता है कि कुछ व्यक्तियों का वर्तमान जीवन उनके सद्कर्मों को देखते हुए सफल और सुखी होना चाहिए था परन्तु असफलता तथा कष्टों से भरपूर हैं, जबकि इसके विपरीत कुछ अशुभ एवं कुकर्म करने वाले व्यक्तियों को जीवन में सफलता तथा वैभव प्राप्त है। इसका कारण उनके पिछले जन्मों के कर्म हैं। महाभारत में विद्वान ब्रहस्पति ने युधिष्ठिर को कहा था कि मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति के शुभ और अशुभ कर्म ही उसके साथ जाते हैं और ये कर्म ही उसके पुनर्जन्म में भाग्य का निर्धरण करते हैं। अत: व्यक्ति को सत्कर्म करने चाहिए। उसे धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए।

पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अभिप्राय उद्यम अथवा प्रयत्न करने से है। 'पुरुषैरर्थ्यते पुरुषार्थ' अर्थात् अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ जीवन के लक्ष्य हैं। अन्तिम लक्ष्य अथवा सर्वोच्च अभीष्ट जीवन का, मोक्ष प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ माध्यम हैं। उपनिषदों, गीता तथा स्मृतियों में भारतीय समाज में व्यक्ति के चार मूलभूत कर्तव्यों (दायित्वों) का उल्लेख मिलता है।

1. धर्म– धर्म व्यक्ति को कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने और अपने दायित्वों का निर्वहन करने की प्रेरणा देता है, यहाँ धर्म का अभिप्राय 'धारयते इति धर्म:' से है, अर्थात् जीवन में जिसे धारण किया जा सके वह धर्म है। धर्म का तात्पर्य अन्धविश्वास, रूढ़ि या भाग्य से नहीं है। धर्म, आचरण पर जोर देता है। धर्म आचरण संहिता के रूप में व्यक्ति को सन्मार्ग पर आगे बढ़ाता है। आत्मसंयम, संतोष, दया, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, अहिंसा, अक्रोध तथा कर्तव्य पालन आदि गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा धर्म प्रदान करता है। व्यक्ति के साथ समाज को उन्नति में योगदान देने वाले सभी गुणों एवं कर्तव्यों के पालन को प्रोत्साहन देता है धर्म। धर्म आदेश देता है कि व्यक्ति दैनिक जीवन में पंच महायज्ञ करे जिससे वह पंच महाऋणों से उऋण हो सके। प्रत्येक मनुष्य पर माता-पिता, देवी-देवता, ऋषि-मुनियों, अतिथियों तथा प्राणी मात्र का ऋण है। उसका यह दायित्व है कि वह जीवन काल में इन सभी ऋणों से उऋण हो। इस प्रकार धर्म व्यक्ति को त्यागमय उपभोग की दिशा में आगे बढ़ाता है।

पाण्डुरंगव ामन(पी.वी.)क णेके अ नुसारध र्मक ास म्बन्ध किसी विशेष ईश्वरीय मत से नहीं है अपितु यह तो आचरण की संहिता है जो मनुष्य के क्रिया-कलापों पर नियंत्रण करती है। इसका लक्ष्य मनुष्य को इस योग्य बनाना है कि वह अपने अस्तित्व के लक्ष्य को प्राप्त कर ले। धर्म, मात्र इहलोक से सम्बन्धित नहीं है अपितु परलोक को उन्नत करने से भी सम्बन्ध रखता है। अर्थात् वह कार्य जिसको सम्पादित करने से इस लोक में उन्नत तथा परलोक के संदर्भ में कल्याण हो वही धर्म है। भारतीय समाज में 'धर्म' को एक पुरुषार्थ मानकर धर्मानुसार आचरण पर बल दिया गया है।

2. अर्थ– 'अर्थ' के अन्तर्गत वे साधन, सम्पत्ति अथवा धन हैं जिनके माध्यम से हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम हो पाते हैं। भारतीय समाज परम्परा में अर्थ जीवन को चलाने का एक साधन है, साध्य नहीं। बी. जी. गोखले अपनी पुस्तक 'इण्डियन थॉट थ्रू द एजेज' में लिखते हैं कि 'अर्थ' के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ (भौतिक) आती हैं जो परिवार को बसाने, गृहस्थी को चलाने एवं विभिन्न धार्मिक दायित्वों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक है। इसमें पशु, भोजन, मकान तथा धन-धान्य आदि को सम्मिलित किया गया है।

धन के अभाव में मनुष्य धार्मिक कार्यों को उचित ढंग से सम्पादन नहीं कर सकता। पंच महायज्ञों को सम्पन्न कर पंच महाऋणों से मुक्त नहीं हो सकता। कौटिल्य निर्धनता को एक पाप पूर्ण स्थिति मानते हैं। इसी प्रकार पंचतन्त्र में बताया गया है कि दरिद्रता एक अभिशाप है। डॉ. राधाकृष्णन का मानना है कि अर्थ एवं सुख की प्राप्ति मनुष्य की उचित इच्छा है, परन्तु यदि वह मोक्ष प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसे उचित तरीके से ही अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिए।

मनुष्य सद्उपायों से अर्थार्जन करे तथा उसे सत्कर्मों में ही खर्च करे। इसीलिए भारतीय सनातन परम्परा में अर्थ को धर्म के अधीन रखा गया है तथा गृहस्थाश्रम में ही इसे अर्जित करने की अनुमति प्रदान की गई है। शेष आश्रमों ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास में इस सम्बन्ध में निषेध है। इसका कारण है कि गृहस्थाश्रम पर ही शेष आश्रम आश्रित हैं इसलिए उद्यम द्वारा गृहस्थ को अर्थ अर्जित करने के लिए आदेशित किया गया है।

3. काम– काम का अभिप्राय सभी प्रकार की इच्छाओं अथवा कामनाओं से है। इसके माध्यम से समाज की निरन्तरता को बनाये रखना सम्भव होता है। यह मानव की मानसिक, शारीरिक तथा भावनात्मक सन्तुष्टि के लिये महत्वपूर्ण होता है। काम का धार्मिक दृष्टि से यह महत्त्व है कि व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण कर विरक्ति की ओर आगे बढ़ता है तथा मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है।

4. मोक्ष– बौद्ध इसे 'निर्वाण' तथा जैन इसे 'कैवल्य' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अन्तिम पुरुषार्थ है। भारतीय मनीषियों का मानना था कि सांसारिक सुख प्राप्ति के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति आवश्यक है। मोक्ष का तात्पर्य है हृदय की अज्ञानता का नाश। मीमांसा में स्वर्ग प्राप्ति को ही मोक्ष माना गया है। 'बौद्ध दर्शन' में मोक्ष को जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति के रूप में माना गया है। जीवन मुक्ति अर्थात् संसार में रहते हुए संसार के कष्टों से छुटकारा पाना तथा तत्व ज्ञान को प्राप्त करना। विदेह मुक्ति का अभिप्राय है जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होना।

मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में तीन मार्ग बतलाए गए हैं–(अ) कर्म मार्ग (ब) ज्ञान मार्ग तथा (स) भक्ति मार्ग।

(अ) कर्म मार्ग–गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित कर कहा है कि जो व्यक्ति बिना फल की इच्छा किए धर्मानुसार आचरण करता है कर्म करता है। वही मोक्ष का अधिकारी होता है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने निर्धारित कर्मों का पालन तथा धर्म के अनुसार आचरण करता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

(ब) ज्ञान मार्ग–व्यक्ति ईश्वर के अव्यक्त स्वरूप को अपने मन में, विचारों में धारण कर लेता है। वह सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखता है तथा सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु आदि से अप्रभावित रहते हुए समस्थिति में रहता है।

(स) भक्ति मार्ग–ईश्वर को साकार मानकर उसकी पूजा आराधना करता है, स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देता है। जब व्यक्ति स्वधर्म का पालन करते हुए भगवान की शरण में चला जाता है और अपने को पूर्णत: समर्पित कर देता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

संस्कार

संस्कार की व्युत्पति 'कृअ' धातु में 'घ' प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका अभिप्राय शुद्धता अथवा पवित्रता है। संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक और धार्मिक परिष्कार के निमित्त की जाने वाली क्रिया है। भारतीय समाज में मानव जीवन का पूर्ण नियोजन है। सामाजिक जीवन पूर्णत: संतुलित, संयमित तथा व्यवस्थित हो इसलिए मनुष्य के जीवन को अवस्थानुसार नियोजित किया गया है। स्त्री-पुरुष सभी का सम्पूर्ण जीवन संस्कारों की छाया से परिपूर्ण रहा है। व्यक्ति के जीवन के परिष्कार के उद्देश्य से तथा धर्मानूकुल आचरण के लिए संस्कार आवश्यक माने गए हैं। संस्कारों की संख्या को लेकर यद्यपि एकमतता नहीं है परन्तु अधिकांश विद्वान 16 संस्कार मानते हैं–

1. गर्भाधान– यह प्रथम संस्कार है माता के गर्भ में जीवन आरम्भ हेतु यह संस्कार संपादित किया जाता है। इसके लिए दम्पति को उचित काल और आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है।

2. पुंसवन– गर्भस्थ शिशु की रक्षा तथा संतान प्राप्ति हेतु यह संस्कार किया जाता है। गर्भाधान के तीसरे, पांचवें और छठवें मास में देवताओं की संतति प्राप्ति हेतु स्तुति तथा आयुर्वेदिक औषधियों का गर्भ रक्षा हेतु प्रयोग किया जाता है।

3. सीमन्तोन्नयन– गर्भवती स्त्री को अमंगलकारी शक्तियों से बचाने के लिए तीसरे एवं आठवें मास के बीच विधि-विधान से माता बनने वाली स्त्री के केशों को संवारा जाता है, उन्हें उठाकर जूड़ा आदि बनाया जाता है।

4.ज ातकर्म– पुत्र उत्पन्न होते ही तुरन्त पश्चात पिता द्वारा मक्खन, शहद एवं दही शिशु की जीभ पर लगाया जाता है।

5. नामकरण– जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन नामकरण किया जाता है।

6. निष्क्रमण– जन्म के चौथे माह में बालक को घर से बाहर निकालकर दिन में सूर्य दर्शन करवाया जाता है तथा रात्रि में चन्द्र दर्शन करवाया जाता है। सूर्य ज्ञान, तेज व ओज का अधिष्ठाता है जबकि चन्द्र शीतलता, धैर्य का।

7. अन्नप्राशन– जन्म के छठे मास में बालक को ठोस आहार दिया जाता है।

8. चूड़ाकर्म– जन्म के पहले अथवा तीसरे वर्ष में मुण्डन करने का जिसमें शिखा (चोटी) छोड़ी जाती है।

9. कर्णबेध– तीसरे या पांचवें वर्ष में कान छेदे जाते हैं। शिशु को निरोग रखने तथा उसके सौन्दर्य में वर्धन करने के लिए किसी अच्छे वैद्य से पहले दाहिना तत्पश्चात् बायां कान बेधा जाता है।

10. विद्यारम्भ– देवताओं की स्तुति के साथ अक्षर ज्ञान प्रारम्भ करवाना।

11. उपनयन– 'उप' का अभिप्राय है 'समीप' एवं 'नयन' का अभिप्राय है 'ले जाना'। इसमें बालक को शिक्षा के लिए गुरु के समीप ले जाया जाता है। इसे 'यज्ञोपवीत' भी कहा जाता है। इसमें बालक को आठवें से बारहवें वर्ष से गुरु के पास विद्या प्राप्ति हेतु भेजा जाता था। इसमें गुरु अपने शिष्य को समीप बैठाकर उसे गायत्री मन्त्र की दीक्षा देता तथा कहता कि 'तुम ब्रह्मचारी हो, जल का पालन करो, काम करो, दिन में शयन मत करो, आचार्य के नियंत्रण में वेदों का अध्ययन करो'।

12. वेदारम्भ– वेदों के अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए यह संस्कार किया जाता था।

13. केशान्त– सोलह वर्ष की आयु में ब्रह्मचारी का मुण्डन किया जाता था। इसे गोदान भी कहा जाता है। कारण कि इस अवसर पर ब्रह्मचारी के परिवार द्वारा आचार्य को गाय दान देने की परम्परा थी।

14. समावर्तन– वेदाध्ययनके प श्चात्ब्रह्मचारीगुरुद क्षिणा देकर स्नान कर अपने घर लौटता था स्नान के बाद ही उसे 'स्नातक' कहा जाता था। इसे दीक्षान्त संस्कार भी कहा जाता है।

15. विवाह– समाज एवं संसार की निरन्तरता के लिए सबसे आवश्यक संस्कार। इस संस्कार के माध्यम से ब्रह्मचारी का गृहस्थाश्रम प्रवेश होता है। अविवाहित स्त्री-पुरुष को यज्ञ का अधिकार नहीं होता है। इसलिए यह वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक विकास के लिए आवश्यक संस्कार है।

16. अन्त्येष्टि– जीवन-मरण से मुक्ति, आत्मा के भटकाव से मुक्ति हेतु विधि विधान से अन्त्येष्टि संस्कार।

मानव के व्यक्तित्व विकास, सामाजिक जीवन के सफल एवं नियंत्रित संचालन हेतु संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संस्कार मानव के सम्मुख उसके सम्पूर्ण जीवन की योजना प्रस्तुत करते हैं। समकालीन समय में संस्कारों की विधि, दर्शन, समय तथा संख्या में व्यापक बदलाव आया है। परन्तु बदलावों के साथ भी आज भी जीवन में इनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। चाहे इनके रूप में बहुत बदलाव आ गया हो।

भारतीय समाज में विविधता की चुनौतियाँ

भारत में भौगोलिक स्थिति, जलवायु, जनसंख्या, प्रजाति, धर्म, भाषा आदि की दृष्टि से अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं। भारत के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में पठार एवं समुद्र तट, पश्चिम में थार का मरुस्थल, पूर्व में पहाड़ी भाग एवं मध्य में मैदानी क्षेत्र के निवासियों के खान-पान, पहनावे, भाषा-बोली, रहन-सहन, प्रथाओं, त्यौहारों आदि में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

1. भौगोलिक विविधता–

पारिस्थितिकी एवं भूगोल सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं। भारतीय राष्ट्र-राज्य सामाजिक, साँस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक विविधतापूर्ण देशों में से एक है। भौगोलिक दृष्टि से भारत के पाँच प्राकृतिक भाग हैं–

I. उत्तर का पर्वतीय प्रदेश– उत्तर में कश्मीर से नेफा तक 1600 मील लम्बी एवं 150 से 200 मील चौड़ी हिमालय पर्वतमाला फैली हुई है। इसमें अनेक दर्रे, चोटियाँ एवं घाटियाँ हैं। अत्यधिक ऊँचाई के कारण इस क्षेत्र में बर्फ जमी रहती है, जिससे यह क्षेत्र वर्षभर बहने वाली नदियों का उद्गम स्थल है। गंगा, यमुना, सरयु, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु यहीं से निकलती हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ और ऋषिकेश जैसे पवित्र स्थान इसी क्षेत्र में है। अलमोड़ा, नैनीताल, कश्मीर, मसूरी, दार्जिलिंग जैसे अनेक पर्यटन स्थल यहाँ हैं। इस क्षेत्र में नागा, अका, गारो, मिकिर, अबोट आदि अनेक जनजातियाँ भी निवासी करती हैं। यहाँ स्थित दर्रों से भारत का विदेश व्यापार होता है। इसलिए ये दर्रे भारत का प्रवेश द्वार कहलाते हैं।

II. गंगा-सिन्धु का मैदान– हिमालय से लेकर दक्षिणी पठार के बीच का मैदानी भाग उत्तर का बड़ा मैदान कहलाता है। यह गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र तथा सतलज नदियों के कारण अत्यधिक उपजाऊ है। देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या इस क्षेत्र में निवास करती है। यहाँ उच्च जनघनत्व है। हरिद्वार, प्रयाग और वाराणासी जैसे पवित्र स्थल इसमें

स्थित हैं। कृषि प्रधान यह क्षेत्र भारत की संस्कृति एवं सभ्यता का उद्गम स्थल रहा है।

III. दक्षिण का पठार– तीन ओर समुद्र से घिरा भारत का दक्षिण भाग पठारी है तथा प्रायद्वीप है। इसको गंगा-सिन्धु के मैदान से विन्ध्य एवं सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियाँ अलग करती हैं। यह त्रिभुजाकार क्षेत्र घने जंगल एवं बहुमूल्य खनिजों से परिपूर्ण है। यहाँ द्रविड़ संस्कृति पाई जाती है। विश्व की प्राचीनतम जनजातियाँ जैसे ईरुला, कादर, चेंचू, मालान्पान्त्रम के साथ-साथ बहुपति विवाही कोटा व टोडा एव मातृसत्तात्मक नायर इसी क्षेत्र में निवास करते हैं।

IV. थार का मरुस्थल– गंगा की घाटी के पश्चिम की ओर शुष्क एवं रेतीला भूभाग जो थार का मरुस्थल (राजस्थान) कहलाता है। सोमनाथ से वापसी के समय महमूद गजनवी की सेना इसी क्षेत्र में पानी के अभाव तथा भीषण गर्मी व रेतीली आँधी के कारण लगभग लुप्त हो गयी थी। यहाँ की जलवायु में अत्यधिक विषमता पायी जाती है।

V. समुद्र तटीय मैदान– दक्षिण के पठारी प्रदेश में पूर्व एवं पश्चिम का क्षेत्र समुद्र के किनारे का भूभाग समुद्र तटीय मैदान कहलाता है। पश्चिम के तट को कोंकण एवं मालाबार कहते हैं। पूर्वी तट को तमिलनाडु तथा आन्ध्र-उड़ीसा तट कहते हैं। पूर्व एवं पश्चिम तट पर भारत के अनेक बन्दरगाह जैसे मुम्बई, सूरत, कालीकट, कोचीन, गोआ, विशाखापट्टनम, चेन्नई आदि स्थित हैं। दक्षिण के पठार का ढाल पूर्व की ओर होने से दक्षिण की नदियां पूर्वी समुद्र तट से होकर समुद्र में गिरती हैं। रामेश्वरम् यहाँ का पवित्र स्थल है। इस प्रकार भारत की भौगोलिक रचना विविधता लिये हुये है। प्रत्येक भौगोलिक भाग की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, संस्कृति आदि में विशिष्टता है।

2. प्रजातीय विविधता– बी.एस. गुहा ने भारत में छः प्रजातियों का उल्लेख किया है–

(i) **नीग्रिटो–**अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, त्रावनकोर तथा कोचीन के कादर एवं पलियन-आदिवासी, आसाम के अंगामी नागा, पूर्वी बिहार की राजमहल पहाड़ियों में बसने वाले बांगड़ी समूह तथा ईरुला।

(ii) प्रोटो-आस्ट्रेलायड–मध्य भारत की अधिकतर जनजातियाँ इसी प्रजाति की हैं। भील तथा चेंचू लोग प्रोटो-आस्ट्रेलायड माने जाते हैं।

(iii) मंगोलायड–आसाम के सीमान्त प्रान्तों चटगाँव, बर्मा, सिक्किम और भूटान के अलावा पश्चिम बंगाल, मणिपुर, त्रिपुरा आदि के लोग।

इन तीनों प्रजातियों को भारत की प्राचीनतम प्रजातियाँ माना जाता है।

(iv) भूमध्यसागरीय– इसकी तीन शाखाएँ हैं-(अ) अल्पाइन (ब) डिनारिक (स) आर्मिनायड।

अल्पाइन एवं डिनारिक प्रजाति के लोग उत्तर एवं पश्चिम भारत में निवास करते हैं। जबकि पारसी जो मुख्य रूप से मुम्बई में निवास करते हैं, आर्मिनायड प्रजाति के हैं।

(v) पश्चिमी चौड़े सिर वाले

(vi) नार्डिक (इण्डो-आर्य)–पंजाब, कश्मीर, हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण, राजस्थान आदि।

3. धार्मिक विविधता–

भारत भूमि का प्राचीनतम धर्म सनातन धर्म रहा है। कालान्तर में स्थितियों में बदलाव तथा बाह्य आक्रमणकाारियों के प्रभाव से स्थानीय धार्मिक संरचना में बदलाव हुआ। सनातन धर्म से बौद्ध, जैन तथा सिख धर्म निकले तथा विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने अनुकूल स्थितियों के सृजन के लिए एवं देशी लोगों को विभाजित करने के हेतु बड़े पैमाने पर शासकीय बल एवं संरक्षण से धर्मान्तरण कर इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुयायी बनाए। बाहर से यहूदी एवं पारसी भी आए। इस प्रकार भारत एक बहुधर्मी राष्ट्र बन गया।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में 79.80 प्रतिशत सनातन धर्म के लोग निवास करते हैं। इस्लाम 14.23 प्रतिशत तथा ईसाई 2.30 प्रतिशत हैं। विस्तृत आँकड़ों के लिए पृष्ठ 15 की सारणी देखें।

आजादी के पश्चात् भारत एक धर्म निरपेक्ष देश बना। कोई भी धर्म राजधर्म के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है इसलिये सभी धर्मों को फलने-फूलने, प्रचार-प्रसार एवं विकास की पूरी छूट है।

विविधता के सभी पहलुओं में धार्मिक विविधता का पहलू सर्वाधिक विवादस्पद है। इसे हमेशा धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता तथा बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक विवाद से जोड़ा जाता रहा है। अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय अभिप्राय गिडिंस के अनुसार 'अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य एक सामूहिकता का निर्माण करते हैं, यानी उनमें अपने समूह के प्रति एकात्मकता, एकजुटता और उससे संबंधित होने का प्रबल भाव होता है। यह भाव हानि अथवा असुविधा से जुड़ा होता है, क्योंकि पूर्वाग्रह और भेदभाव का शिकार होने के अनुभव आमतौर पर अपने ही समूह के प्रति निष्ठा और दिलचस्पी की भावनाओं को बढ़ावा देता है।' इसलिए जो समूह सांख्यिकीय दृष्टि से अल्पसंख्यक हों जैसे बायें हाथ से लिखने, खेलने, खाने वाले लोग, 29 फरवरी को जन्मे लोग। समाजशास्त्रीय अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं होते, कारण कि

इनमें सामूहिकता के भाव नहीं होते।

अल्पसंख्यकों के संदर्भ में हानि एवं असुविधा का अभिप्राय, केवल आर्थिक पक्ष से ही जुड़ा हुआ नहीं है अपितु सांस्कृतिक पक्ष से भी जुड़ा है जैसे पारसी एवं सिक्ख आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हुए भी धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। लोकतन्त्र में अल्पसंख्यक वर्ग राजनैतिक दृष्टि से भी कमजोर होता है।

धार्मिक विविधता, भारत की एकता एवं अखण्डता के लिए इतिहास में विघटनकारी रही है। सन 1947 में धर्म के आधार पर ही भारत दो भागों में भारत एवं पाकिस्तान में (वर्तमान पाकिस्तान तथा बांग्लादेश) विभक्त हो चुका है।

4. भाषाई विविधता–

भारत एक बहुभाषाई एवं बोलियों वाला राष्ट्र-राज्य है। यहाँ सवा अरब से ज्यादा की जनसंख्या कुल मिलाकर लगभग 1,632 भिन्न-भिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलते हैं। इन भाषाओं में से बाईस भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देकर आधिकारिक मान्यता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 341(1) एवं 351 के अनुसार ये बाईस भाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

1. असमी
2. बांग्ला
3. बोडो
4. डोगरी
5. गुजराती
6. हिन्दी
7. कन्नड़
8. कश्मीरी
9. कोंकणी
10. मैथिली
11. मलयालम
12. मणिपुरी
13. मराठी
14. नेपाली
15. उड़िया
16. पंजाबी
17. संस्कृत
18. संथाली
19. सिंधी
20. तमिल
21. तेलगू
22. उर्दू

पूर्व में 18भाषाएँ इस अनुसूची में थीं, अंतिम संशोधन के रूप में चार भाषाओं बोडो, डोगरी, मैथिली तथा संथाली को इस अनुसूची में और स्थान दिया गया है।

भारत की सभी भाषाओं को प्रमुखत: तीन भाषाई परिवारों में विभक्त किया गया है–

(i) इण्डो आर्यन भाषा परिवार–इसमें हिन्दी,उर्दू,बंगला, असमिया, उड़िया, सिन्धी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, बिहारी, हिमालयी आदि भाषाएँ सम्मिलित की जाती है।

(ii) द्रविड़ भाषा परिवार–इसके अन्तर्गत तेलगू, कन्नड़, मलयालम, गोण्डी, तमिल आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) आस्ट्रिक भाषा परिवार–इसके अन्तर्गत मुण्डारी, संथाली, खासी, हो, खड़िया, बिरहोर, भूमिज, कोरवा, कोरकू, जुआंग आदि भाषाएँ आती हैं।

भाषाई विविधता ने भारतीय राष्ट्र-राज्य के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। भाषाई विविधता ने पृथकतावाद को भी हवा दी है। 1953 के राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन का सुझाव दिया था, जिसके आधार पर राज्य बने। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने का दक्षिण के राज्यों ने विरोध किया था। इधर हिन्दी भाषी उत्तर के राज्यों ने अंग्रेजी का विरोध किया।

लॉर्ड मैकाले की चाल जिसने ब्रिटिश हितों की पूर्ति करने वाले बाबू वर्ग को उत्पन्न करने के लिए अंग्रेजी को राजकाज की भाषा बनाना, आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी भारी पड़ रही है।

5. जलवायु सम्बन्धी विविधता– भारत के पाँच भौगोलिक क्षेत्रों में एक-दूसरे से जलवायु सम्बन्धी पर्याप्त विभिन्नता है। कहीं वर्षभर में बमुश्किल दो-चार इंच वर्षा होती है तो कहीं वर्षा से हर वर्ष बाढ़ आती है। कहीं पर वर्ष भर मौसम एक सा रहता है (समुद्रतटीय क्षेत्र), तो कहीं पर भीषण गर्मी (राजस्थान) एवं कहीं पर भीषण सर्दी (पहाड़ी क्षेत्र)। इसी भिन्नता के कारण फसलों में वनस्पतियों में अन्तर आता है तथा लोगों का रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान भी बदल जाता है। इस प्रकार सांस्कृतिक विविधता का एक बड़ा कारण जलवायु सम्बन्धी विविधता भी है।

6. जनांकिकीय विविधता– भारतीय समाज जनांकिकीय दृष्टिकोण से भी काफी विविधतापूर्ण है। जनघनत्व, लिंगानुपात, जन्म दर, मृत्युदर, जीवन प्रत्याशा तथा साक्षरता के संदर्भ में राज्य दर राज्य पर्याप्त भिन्नता है। इसके साथ शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में भी भिन्नताएँ

विद्यमान हैं। 2011 की भारत की जनगणना अनुसार भारत की कुल जनसंख्या एक अरब इक्कीस करोड़ पाँच लाख उन्नहत्तर हजार पांच सौ तिहत्तर है। 2011 की भारत की जनगणना के अनुसार भारत में जनघनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। राज्यों में बिहार में सर्वाधिक 1102 व्यक्ति/किमी^{2}। इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल में 1029 व्यक्ति/किमी.^{2} है। राजस्थान में 201 व्यक्ति/किमी.^{2} तथा न्यूनतम अरुणाचल प्रदेश में 17 व्यक्ति/किमी.^{2}ि नवासक रतेह ैंव हींर ाष्ट्रीयर ाजधानीक्ष ेत्रद ल्लीम ें 11,297 व्यक्ति/किमी.^{2} निवास कर रहे हैं। लिंगानुपात के संदर्भ में चर्चा की जाये तो 2011 में भारत में लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर 943 महिलाएँ था, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 949 तथा शहरी क्षेत्र में यह 929 महिलाओं का था। हरियाणा में जहाँ यह आँकड़ा 879 कुल तथा ग्रामीण 882 एवं शहरी 873 था, वहीं राजस्थान में कुल 928, ग्रामीण 933 तथा शहरी 914 था। केरल में लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में रहा कुल 1084, ग्रामीण 1078 तथा शहरी 1091, इसी प्रकार केन्द्र शासित प्रदेशों में दमनदीव सबसे न्यूनतम 618 कुल, ग्रामीण 864 तथा शहरी 551 रहा तो पुडुच्चेरी सर्वाधिक कुल 1037, ग्रामीण 1028एवं शहरी 1042 महिलाएँ प्रति एक हजार पुरुष रहा। 0-6 आयु समूह में पूरे भारत वर्ष में कहीं भी लिंगानुपात लड़कियों के पक्ष में नहीं रहा। केरल एवं पुडुच्चेरी जिनमें कुल लिंगानुपात जो महिलाओं के पक्ष में था, वहाँ भी इस आयु समूह में क्रमशः कुल 964 ग्रामीण 965 तथा शहरी 963 (केरल) एवं कुल 967, ग्रामीण 953 तथा शहरी 975 (पुडुच्चेरी) रहा।

जीवन प्रत्याशा के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र प्रतिवेदन 2015 स्पष्ट करता है कि धीरे-धीरे भारत में जीवन प्रत्याशा वैश्विक स्तर 71.4 वर्ष की तरफ बढ़ रही है। 2015 में भारत में औसत जीवन प्रत्याशा 68.3 वर्ष जबकि पुरुषों की यह 66.9 वर्ष तथा महिलाओं की 69.9 वर्ष रही है, जिसमें क्षेत्रीय विषमताएँ विद्यमान हैं। जनसंख्या वितरण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 2011 की जनगणना स्पष्ट करती है कि भारत की जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में तथा 31.2 फीसदी शहरी क्षेत्र में निवास करती है। शहरीकरण तेज गति से बढ़ रहा है अर्थात गाँवों से नगरों की तरफ पलायन बढ़ा है इसमें भी क्षेत्रीय विभिन्नता है। जहाँ उत्तर प्रदेश में दशकीय परिवर्तन देखा जाए तो ग्रामीण क्षेत्र का 18 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्र में 28.8 प्रतिशत रहा। वहीं सिक्किम में ग्रामीण क्षेत्र -5 फीसदी (नकारात्मक) तथा शहरी क्षेत्र में 156.5 प्रतिशत रहा। इसी प्रकार लक्षद्वीप में ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या में बदलाव -58 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्र में 86.6 प्रतिशत देखने को मिला। साक्षरता के परिप्रेक्ष्य में भी बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानता व्याप्त है। साक्षरता का राष्ट्रीय औसत (2011) 74.04 प्रतिशत था। पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता 65.46 प्रतिशत था।

साक्षरता दर (2011)

	कुल (प्रतिशत में)	पुरुष (प्रतिशत में)	महिलास ाक्षरता (7 वर्ष एवं अधिक आयु)
भारत	74.04	82.14	65.46
केरल	93.91	96.02	91.98
लक्षद्वीप	92.28	96.11	88.25
मिजोरम	91.58	93.72	89.40
राजस्थान	67.06	80.51	52.66
अरुणाचल प्रदेश	66.95	73.69	59.57
बिहार	63.82	73.39	53.33

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि केरल का कुल साक्षरता प्रतिशत 93.91 है जो भारत में सर्वाधिक है। बिहार में न्यूनतम 63.82 प्रतिशत है। पुरुष साक्षरता में लक्षद्वीप 96.11 प्रतिशत के साथ शिखर पर है, तो बिहार 73.39 प्रतिशत के साथ सबसे निचले पायदान पर है। महिला साक्षरताके स न्दर्भम ेंके रल9 1.98प्र तिशतस ाथशि खरप रहै त ो राजस्थान 52.66 प्रतिशत के साथ सबसे निचले पायदान पर है। जनसंख्यास म्बन्धीय ेंवि शेषताएँभ ारतीयस माजक ोअ लग-अलग स्तरों में विभक्त करती हैं।

7. साँस्कृतिक विविधता– भारत में वेष-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, कला, संगीत, नृत्य, प्रथा, त्यौहार, उत्सव आदि संदर्भ में बहुत अधिक विविधता पायी जाती है। उत्तर तथा दक्षिण भारत तथा ग्रामीण एवं नगरीय स्त्री-पुरुषों के पहनावे में बहुत अधिक अन्तर देखने को मिलता है। पंजाब में सलवार, कुर्ता, पगड़ी, राजस्थान में धोती, कुर्ता, साफा, बंगाल में धोती कुर्ता दक्षिण में लुंगी और कुर्ता इसी प्रकार महिलाओं के पहनावे में भी बहुत अन्तर देखने को मिलता है। पंजाब, हरियाणा में गेहूँ, राजस्थान में बाजरा, ज्वार, मक्का, बंगाल, बिहार में चावल तथा बंगाल में चावल, मछली लोगों का मुख्य भोजन है। पंजाब में भंगड़ा, राजस्थान में घूमर, डांडिया, गुजरात में गरबा तो दक्षिण भारत में भरतनाट्यम (तमिलनाडु एवं कर्नाटक में) उत्तर प्रदेश में कथक (उत्तर भारत में), केरल में कथकली, आन्ध्रप्रदेश में कुच्चीपुड़ी, मोहिनी अट्टम केरल में, उड़ीसा में ओडिसी नृत्य प्रचलित हैं। इसी प्रकार त्योहार एवं उत्सवों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। राजस्थान के गणगौर एवं तीज, पंजाब की लोहड़ी, महाराष्ट्र की गणपति पूजा, बिहार की छठ पूजा, केरल का ओणम, गुजरात, महाराष्ट्र की विजयादशमी, पश्चिम बंगाल की दुर्गा पूजा, मथुरा (उत्तर प्रदेश) की

कृष्ण जन्माष्टमी, पंजाब का गुरु पर्व, असम का बिहु, तमिलनाडु का पोंगल, केरल का बिशु अपनी-अपनी विशिष्टताएँ लिये हुए हैं। इसी प्रकार कला एवं संगीत के क्षेत्र में विविधताएँ निहित हैं। विवाह एवं परिवार के मामले में भी यहाँ एक विवाह, बहुपति विवाह, बहु पत्नी विवाह विद्यमान हैं जबकि मातृ सत्तात्मक एवं पितृ सत्तात्मक दोनों प्रकार के परिवार यहाँ पाये जाते हैं। मन्दिर, मस्जिद, चर्च, स्तूप आदि के निर्माण की शैली में पर्याप्त विभिन्नता मौजूद है।

8. जातीय एवं जनजातीय विविधता– भारतीय समाज अनेक जातियों एवं जनजातियों में विभक्त है। प्रत्येक जाति एवं जनजाति के अपने खान-पान, रहन-सहन, विवाह तथा सामाजिक संबंधों को स्थापित करने के नियम हैं। भारत में लगभग 3000 जातियाँ तथा 25000 से ज्यादा उपजातियाँ हैं। इनमें ऊँच-नीच का संस्तरण है। व्यवसायों की भिन्नता है। इनके निवास के क्षेत्रों में भिन्नता है। यही विशेषताएँ जनजातियों में भी देखने को मिलती है।

विगत विवेचन से परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज काफी विविधतापूर्ण है।

विभिन्नता में एकता–

भारतीय समाज में विविधताओं की अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जिनका वर्णन, विश्लेषण हमने इसी अध्याय के विगत कुछ पृष्ठों में किया है। हम जानते हैं कि इन सभी विविधताओं के होते हुए भी भारत एक है, भारतीय समाज एक है। भारत के सभी भागों, धर्मों, संस्कृतियों में अन्योन्याश्रितता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। जिस प्रकार शरीर के अनेक अंग एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नता लिये हुये होते हैं, लेकिन सभी का अस्तित्व अर्थपूर्ण तभी होता है जब सब साथ मिले रहते हैं। यही सम्बन्ध भारतीय समाज के अंगों का है।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''भारत का सिंहावलोकन करने वाले भारत की अनेकता और विभिन्नता से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं। वे भारत की एकता को साधारणत: नहीं देख पाते, यद्यपि युगों-युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान् एवं मौलिक तत्त्व रहा है। पाँच या छह हजार वर्ष हुए कि सिन्धु घाटी की सभ्यता उत्तर में फली-फूली और कदाचित् दक्षिण भारत तक फैल गयी। इतिहास के उस प्रभाव से अनगिनत जातियाँ, विजेता, तीर्थ यात्री एवं छात्र एशिया की ऊँची-ऊँची भूमि से भारत के मैदान में आये जिन्होंने भारतीय जीवन, संस्कृति और कला को प्रभावित किया, किन्तु इसी देश में विलीन हो गये। इन सम्पर्कों से भारत में परिवर्तन हुआ, किन्तु उसकी आत्मा मौलिक रूप से पुरानी रही है। यह तभी सम्भव हुआ होगा जब मौलिक एकता की भावना की जड़ें गहराई तक हों, जब उन्हें नवागन्तुकों ने स्वीकार किया हो'' अर्थात् भारत में विभिन्नता में एकता प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है–

1. धार्मिक विभिन्नता में एकता– भारत विभिन्न धर्मों की जन्म तथा आश्रयस्थली रहा है। यहाँ सनातन धर्म से जैन, बौद्ध तथा सिक्ख धर्मों का जन्म हुआ। कहने को तो ईसाई एवं इस्लाम धर्म विदेशी हैं, लेकिन भारतीय ईसाई एवं भारतीय इस्लाम धर्म के अनुयायियों के पूर्वज सनातनी ही थे। बाहरी आक्रमण तथा सत्ता एवं शासन के संरक्षण ने इन्हें ईसाई अथवा इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया। यह एक प्रधान कारण है कि भारतीय धर्मों में सभी में एक मूलभूत एकता व्याप्त है।

भारत में जितने भी धर्मावलम्बी हैं, इनके पूर्वज कभी न कभी एक ही मत के रहे हैं इस कारण धर्म ने भारत में एकता स्थापित की है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार 'एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में अन्तर्निहित है। भारत के कोने-कोने में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ स्थान हैं। पूरे देश के हर भाग में शास्त्रीय संस्कृति के कुछ विशिष्ट स्थान दृष्टिगोचर होते हैं। भारत न केवल हिन्दुओं के लिए ही पवित्र भूमि है, यह सिक्ख, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए भी पवित्र स्थल है। मुसलमानों और ईसाइयों के भारत में अनेक तीर्थ स्थान हैं, विभिन्न धार्मिक समूहों में जाति प्रथा पायी जाती है इससे इन सबमें एक समान सामाजिक युक्ति दिखाई देती है।''

एक ही स्थान पर निवास करने वाले विभिन्न धार्मिक समूहों के लोगों में परस्पर अन्तर्निभरता पायी जाती है। आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों से भी यह अन्तर्निभरता बढ़ी है। एक धर्म के अनुयायी अथवा अनुयायियों ने यदि किसी क्षेत्र में विशेषज्ञता अर्जित की है तो दूसरे धर्म के अनुयायी उसके उपभोक्ता बन जाते हैं। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के पास समान मताधिकार है। सत्ता पाने के लिए चुनाव जीतना आवश्यक है और इसके लिए सभी धर्मों एवं जातियों के मानने वालों के मत चाहिए होते हैं। इसी प्रकार एक ही व्यवसाय में अनेक धर्मों के धर्मावलम्बी साथ-साथ काम करते हैं। विभिन्न त्योहारों और उत्सवों जैसे दीपावली, होली, ईद, दशहरा, नववर्ष के अवसर पर सभी धर्मावलम्बी एक-दूसरे के हर्षोल्लास में सहभागी बनते हैं।

भारत में धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय के तत्व विद्यमान हैं। जब भी कोई प्राकृतिक आपदा आती है अथवा राष्ट्र की सम्प्रभुता पर कोई संकट आता है, सभी भारतीय एकजुट होकर सफलतापूर्वक उसका मुकाबला करते हैं। सभी धर्मों के अनुयायी सार्वजनिक जीवन में एक-दूसरे के साथ मिलकर समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्य करते हैं। इस अन्त:क्रिया के कारण इन्होंने एक-दूसरे की धार्मिक विशेषताओं को

भी ग्रहण किया है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। संत कबीरदास जी ने भी समन्वयी परम्परा को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि–

'मोको कहां ढूंढे रे बंदे,
मैं तो तेरे पास में
ना तीरथ में, ना मूरत में
ना एकांत निवास में
ना मंदिर में, ना मस्जिद में
ना काबे कैलास में
मैं तो तेरे पास में बंदे
मैं तो तेरे पास में...'

इन पंक्तियों में कबीरदास जी सनातनी तथा मुसलमान दोनों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि पूजा पद्धति में भेद होते हुए भी दोनों को तलाश एक ही सर्वोच्च सत्ता की है जो कि हर मानव के अन्दर ही है।

विभिन्न धर्मों में दिखाई देने वाली विभिन्नता बाहरी है, सतही है, मूल में सभी भारतीय धर्मों में एकरूपता है। सभी धर्म, आध्यात्म ईश्वर, ईमानदारी, सच्चाई, अहिंसा, नैतिकता, दया, परोपरकार आदि में विश्वास करते हैं। दूरस्थ गाँव का व्यक्ति भी स्नान करते समय स्नान के जल में गंगा, यमुना, कावेरी, सिन्धु, सरस्वती आदि सभी नदियों के जल को प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।

भारत में विभिन्न धार्मिक समूहों के निवास करने के उपरान्त भी सभी की पहचान एक भारतीय के रूप में ही है।

2. सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता– भारत के अलग-अलग भू-भागों में निवास करने वाले लोगों में परिवार, विवाह, रीति-रिवाजों, पहनावे, भाषा-बोली, खान-पान आदि को लेकर पर्याप्त विभिन्नता विद्यमान है। इन सबके उपरान्त भी सम्पूर्ण भारतीय, समाज में एकता के तत्व दिखाई पड़ते हैं। जाति व्यवस्था पूरे भारत के सभी क्षेत्रों, धर्मों में समान रूप से मान्यता प्राप्त है। संयुक्त परिवार प्रथा, कर्म एवं पुनर्जन्म में आस्था, विवाह की एक स्वीकृत प्रणाली, तीर्थाटन की परम्परा, उपवास, त्योहार, लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में आस्था, एक संविधान, बड़ों के सम्मान के मानदण्ड, आध्यात्मिक दर्शन, योग, दान एवं पुण्य की अवधारणा, ऋणों से उऋण होने के प्रयासों में विश्वास, गृहस्थ धर्म का पालन, साधु-संन्यासियों का सम्मान, राष्ट्रीय उत्सव एवं प्रतीक जैसे–भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान, माता दुर्गा, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती की पूजा एवं आराधना, स्वर्ग-नरक की अवधारणा में विश्वास, सभी भाषाओं में व्याकरण सम्बन्धी एकता, ज्ञान का सम्मान, पवित्रता की अवधारणा, आचरण सम्बन्धी शुद्धता के नियम, कमजोर के प्रति दया भावना, वनस्पतियों, नदियों पहाड़ों, सूर्य अर्थात् प्रकृति की उपासना, कण-कण में सर्वोच्च सत्ता के वास की धारणा सम्पूर्ण भारत में समानता के साथ विद्यमान है। पद्धति में भिन्नता हो सकती है, लेकिन प्रवृत्ति एवं भावनाओं की तीव्रता में साम्यता विद्यमान है जो भारत की सांस्कृतिक एकता का द्योतक है। इसलिए कहा जाता है कि परिवर्तन संस्कृति के अन्दर हुए है न कि संस्कृति का। संस्कृति का मूल रूप आज भी अपरिवर्तित है।

3. भौगोलिक विभिन्नता में एकता– भौगोलिक दृष्टि से हमने भारत को पाँच भागों में विभक्त किया है। इनमें एक-दूसरे में वर्षा, जलवायु, उपजाऊपन, खनिज संसाधन, वन एवं संरचना को लेकर बहुत विषमता है। यहाँ तक कि संचार एवं यातायात के आधुनिकतम साधनों के अभाव में इन क्षेत्रों में आपसी सम्पर्क एवं आवागमन ही एक दुष्कर कार्य है।

इन सबके उपरान्त भी भारत एक भौगोलिक इकाई है। प्रकृति ने भारत की प्राकृतिक सीमाएँ बनाई हैं जो शेष विश्व से भारत को अलग कर एक देश के रूप में पृथक एवं एक इकाई के रूप में स्थापित करती है। उत्तर में हिमालय तथा तीन दिशाओं में समुद्र भारत देश के प्राकृतिक पहरेदार तथा सृजनहार है। इससे देश के निवासियों में एक देश के नागरिक होने के भाव जागृत हुए हैं। इसी प्रकार देश के अन्दर आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों दिशाओं में चार मठों यथा उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में पुरी और पश्चिम में द्वारिका ने समस्त भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। इन्होंने भारतीयों में मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम का संचार किया है।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों, षड्दर्शन आदि ने तथा ऋषियों एवं मुनियों ने भारत की एकता के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। उनके विचार एवं व्यवहार से भारत भूमि एक है, की प्रेरणा मिलती है। हमारे ग्रन्थों में 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि'। जन्म भूमि स्वर्ग से भी प्यारी है तथा 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या' (पृथ्वी मेरी मां है और मैं उसका पुत्र हूँ) जैसे अनेक मातृभूमि से सम्बन्धित बलिदान एवं त्याग की भावना से ओतप्रोत कर देने वाले उदाहरण है। इस देश में निवास करने वाले नागरिक भारत भूमि को भारत माता कहकर सम्बोधित करते हैं इसलिए सभी क्षेत्रों के निवासी एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से भी जुड़े हुए हैं।

4. राजनैतिक विभिन्नता में एकता– भारत सांस्कृतिक रूप से एक इकाई रहा है, राजनैतिक एकता का प्राय: इतिहास में अभाव ही रहा है। सम्पूर्ण भारत अनेक राजा-महाराजाओं के नियन्त्रण में बंटा हुआ रहा है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व अशोक महान् तथा अकबर के समय जरूर एक राजनैतिक इकाई हम रहे हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में

एक लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना हुई। विभिन्न प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों का गठन हुआ। प्रान्तों ने मिलकर भारत संघ का निर्माण किया। प्रान्तीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो राजनैतिक विविधता दिखाई देती है। परन्तु चीन एवं पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में सभी जातियों, धर्मों, राजनैतिक दलों ने एकजुट होकर युद्धों का सामना किया। स्वतन्त्र भारत में पहली बार इस तरह राजनैतिक एकता दिखाई दी। एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार पंचवर्षीय योजनाएं, एक केन्द्रीय सरकार, एक कानून, भारत की एकता का पर्याप्त प्रमाण है। पूरे देश का एक संविधान, विधि का शासन, बिना किसी भेदभाव के सभी के समान अधिकार एवं दायित्व, विशेषाधिकारों की समाप्ति, विषमतामूलक व्यवस्था की समाप्ति, समतामूलक कानूनों का निर्माण, सभी को समान एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व, अवसरों की समानता, कमजोर एवं पिछड़ों को आगे बढ़ाने के लिए संवैधानिक संरक्षण, छुआछूत एवं दमनकारी व्यवहारों का अन्त, धर्म, भाषा, क्षेत्र, जाति के आधार पर राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं आदि भारत की राजनैतिक एकता का परिचायक है। एक सेना, एक सरकार, एक संविधान, एक झण्डा, एक संसद, एक मानचित्र, सभी के लिए समान राष्ट्रीय प्रतीक, समान राष्ट्रीय पर्व, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय पक्षी, एक राष्ट्रगीत, एक राष्ट्रगान ये सभी भारत की राजनैतिक एकता के परिचायक हैं।

हिन्दू शब्द सिन्धु से बना है। भारतीय सभ्यता को सिन्धु सभ्यता माना जाता है इसलिए इस देश का नाम हिन्दुस्तान पड़ा और यहाँ रहने वालों को हिन्दू कहा गया। अत: हिन्दू धर्म न होकर एक संस्कृति है, जीवनशैली, विचार है जिसका प्रतिनिधित्व सभी हिन्दुस्तानी नागरिकों द्धारा माना जा सकता हैं। भारतीय धर्म के संदर्भ में धर्म ग्रन्थों में सनातन शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए इस अध्याय में भी सनातन शब्द का ही प्रयोग किया है। विष्णु सहस्त्रनाम नामक ग्रन्थ में परमात्मा के पर्याय के लिए सनातन का शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ त्रैकालिक अस्तित्व से सम्बन्धित है। यह शब्द सना अव्यय पूर्व ल्युट् प्रत्यय से व्याकरण द्वारा निष्पन्न है अर्थात् सना + तन = सनातन।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय समाज 'एक समाज' का उदाहरण है।
- संरचना का अर्थ विशिष्ट पद्धति से किसी इकाई की निष्पत्ति से है। परिष्कृत निर्माण को संरचना कहा जाता है।
- गाँव अथवा ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है जहाँ कृषि की प्रधानता, प्रकृति से समीपता, प्राथमिक सम्बन्धों की बहुलता, कम आबादी, एकरूपता, स्थिरता, विभिन्न मुद्दों पर सामान्यत: सहमति आदि विशेषताएँ होती हैं।
- कस्बा एवं नगर, गाँवों से अलग जीवन जीने के विशिष्ट ढंग और विशिष्ट संस्कृति के सूचक हैं।
- भारतीय सामाजिक संरचना में जाति नाम की संस्था सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठी एवं विशिष्ट संस्था है।
- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में जनजातीय आबादी 8.61 प्रतिशत है।
- अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'साइमन कमीशन' द्वारा 1935 में किया गया।
- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों की आबादी 16.6 प्रतिशत है।
- मण्डल आयोग ने अपने प्रतिवेदन में 3,743 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित किया।
- भारतीय परिवारों की भावना आज भी संयुक्त परिवार की तरफ है।
- सन् 1957 में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल के शिक्षक विधेयक के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक समूह उस समूह को माना जिनकी संख्या राज्य में 50 प्रतिशत से कम है।
- धर्म सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित करने के लिए पतिव्रता स्त्री की आवश्यकता होती है। पत्नी की धार्मिक कार्यों में महत्ता के कारण उसे 'धर्म-पत्नी' कहा जाता है।
- इस्लाम में विवाह को 'निकाह' कहा जाता है।
- हिन्दू विवाह एक संस्कार है जबकि इस्लाम एवं ईसाई विवाह एक समझौता है। ईसाई विवाह एक स्थायी समझौता है।
- परम्पराएँ परिवर्तन की विरोधी नहीं हैं, जैसा कि इन्हें समझा जाता है। अपने मूल स्वरूप को बरकरार रखते हुए परम्पराएँ 'सुधार के लिए संघर्षरत' रहती हैं।
- मानव के कर्म ही सर्वोच्च पुरुषार्थ 'मोक्ष' प्राप्ति का मार्ग हैं।
- अपने अभीष्ट (अन्तिम/सर्वोच्च लक्ष्य) को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना पुरुषार्थ है।
- सनातन धर्म में 16संस्कार माने गये हैं।
- भारत में भौगोलिक स्थिति, जलवायु, जनसंख्या, प्रजाति, धर्म, भाषा आदि की दृष्टि से अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं।
- संविधान की आठवीं अनुसूची में बाईस भाषाएँ सम्मिलित की गई हैं।
- सम्पूर्ण भारत में अनेक प्रकार की विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के लक्षण महत्त्वपूर्ण हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'' कहा है–
   (अ) अरस्तू (ब) मैकाइवर
   (स) प्लेटो (द) दुबे
2. 'भारतीय समाज' उदाहरण है–
   (अ) एक समाज का (ब) समाज का
   (स) समुदाय का (द) संस्था का
3. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत है–
   (अ) 31.16 (ब) 70.00
   (स) 68.84 (द) 68.48
4. गाँव को 'जीवन विधि' के रूप में किसने परिभाषित किया है?
   (अ) टी.एन. मदान (ब) डी.एन. मजुमदार
   (स) एस.सी. दुबे (द) एम.एन. श्रीनिवास
5. 'कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन' पुस्तक किसने लिखी है?
   (अ) मैकिम मैरियट (ब) मिल्टन सिंगर
   (स) बी.आर. चौहान (द) जी.एस. घुर्ये
6. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में अनुसूचित जातियों को क्या कहा जाता था?
   (अ) भग्न पुरुष (ब) बाह्य जाति
   (स) ये दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
7. 1931 की जनगणना में अनुसूचित जातियों को क्या कहा गया?
   (अ) दलित वर्ग (ब) बाहरी जाति
   (स) अनुसूचित जाति (द) कोई नहीं
8. अनुसूचित जाति से सम्बन्धित कौनसा अनुच्छेद भारतीय संविधान में है?
   (अ) 339 (ब) 341
   (स) 340 (द) 342
9. अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित कौनसा अनुच्छेद भारतीय संविधान में है?
   (अ) 338 (ब) 342
   (स) 344 (द) 372
10. भारतीय समाज में एक मानव के लिए 'ऋण' निर्धारित हैं–
    (अ) 4 (ब) 7
    (स) 5 (द) 9
11. मुस्लिम विवाह में सही विवाह किसको माना गया है?
    (अ) निकाह (ब) मुताह
    (स) फासिद (द) बातिल
12. भारतीय परम्परा में गुण कितने प्रकार के माने गए हैं?
    (अ) एक (ब) पाँच
    (स) सात (द) तीन
13. भारतीय सनातन परम्परा में जीवन का अन्तिम तथा सर्वोच्च लक्ष्य क्या माना गया है?
    (अ) धर्म (ब) काम
    (स) मोक्ष (द) अर्थ
14. ''धर्म का सम्बन्ध किसी विशेष ईश्वरीय मत से नहीं है अपितु यह आचरण की संहिता है, जो मनुष्य के क्रियाकलापों पर नियंत्रण करती है।'' कहा है–
    (अ) पाण्डुरंग वामन काणे
    (ब) श्रीनिवास
    (स) योगेन्द्र सिंह
    (द) मजुमदार।
15. संविधान की आठवीं सूची में कितनी भाषाएँ सम्मिलित हैं?
    (अ) 18 (ब) 20
    (स) 22 (द) 23
16. 2011 की जनगणनानुसार भारत में जन घनत्व है–
    (अ) 282 (ब) 382
    (स) 482 (द) 182
17. 2011 की जनगणनानुसार भारत में लिंगानुपात कितना है?
    (अ) 943 (ब) 942
    (स) 939 (द) 843
18. भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का राष्ट्रीय औसत क्या है?
    (अ) 73.04 (ब) 72.04
    (स) 71.04 (द) 74.04

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में नगरीय आबादी का प्रतिशत कितना है?
2. भारत में (2011) कुल नगरीय क्षेत्रों की संख्या कितनी है?
3. जाति अन्तर्विवाह 'जाति प्रणाली का सारतत्त्व' है, किसने कहा है?
4. महात्मा गांधी ने 'अनुसूचित जाति' को किस नाम से पुकारा?
5. मण्डल आयोग का गठन कब किया गया था?

6. सम्बन्धों के आधार पर परिवार कितने प्रकार के पाये जाते हैं?
7. सनातन धर्म में विवाह को कितने जन्मों का साथ माना गया है?
8. 'मुताह विवाह' किस धर्म का उदाहरण है?
9. विवाह एक 'स्थायी समझौता' है, किस धर्म की मान्यता है?
10. 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' पुस्तक के लेखक का नाम बताइए।
11. परम्पराओं का सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत कौनसी परम्पराएँ हैं?
12. ''भारत की लोक परम्परा में निहित चिन्तन तथा दर्शन को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है।'' किसने कहा है?
13. 'मोक्ष' को बौद्ध क्या कहते हैं?
14. देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या किस क्षेत्र में निवास करती है?
15. 'थार का मरुस्थल' किस राज्य में स्थित है?
16. राजस्थान में 2011 की जनगणनानुसार लिंगानुपात कितना है?
17. घूमर किस राज्य का नृत्य है?
18. 'द्वारिका' भारत में किस दिशा में स्थित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. संरचना को परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक संरचना क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3. गाँव की विशेषताएँ बताइए।
4. कस्बे को परिभाषित कीजिए।
5. गोविन्द सदाशिव घुर्ये के अनुसार जाति की विशेषताएँ लिखिए।
6. अन्य पिछड़े वर्ग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. कर्म कितने प्रकार के होते हैं? लिखिए।
8. पुरुषार्थ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. संस्कार कितने माने गए हैं? संक्षेप में बताइए।
10. मुस्लिम विवाह के प्रकार बताइए।
11. भौगोलिक दृष्टि से भारत के कितने भाग हैं? लिखिए।
12. भारत में जनांकिकीय विविधता को स्पष्ट कीजिए।
13. धार्मिक विभिन्नता में एकता को संक्षेप में समझाइए।
14. नगर किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
15. जनजाति को परिभाषित कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलुओं को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय समाज के सांस्कृतिक पहलू कौन-कौन से हैं? विवेचना कीजिए।
3. भारतीय समाज के समक्ष विविधताओं की चुनौतियों का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय समाज में विभिन्नता में एकता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

1. (अ)	2. (अ)	3. (स)	4. (ब)	5. (द)
6. (स)	7. (ब)	8. (स)	9. (ब)	10. (स)
11. (अ)	12. (द)	13. (स)	14. (अ)	15. (स)
16. (ब)	17. (अ)	18. (द)		